ISSN-0971-8397

योजना

फरवरी 2014 विकास को समर्पित मासिक ₹10

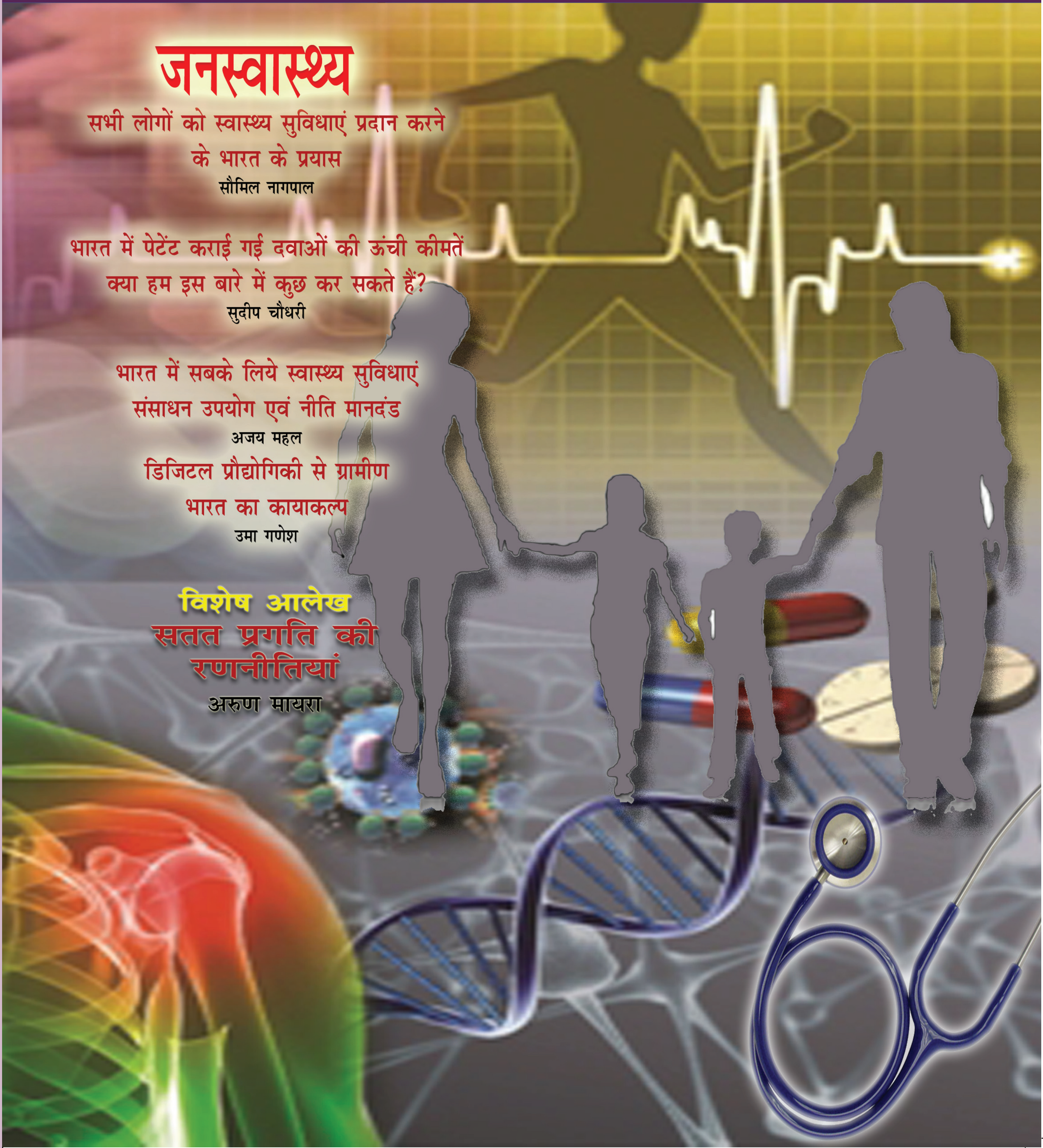

जनस्वास्थ्य

सभी लोगों को स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान करने के भारत के प्रयास
सौमिल नागपाल

भारत में पेटेंट कराई गई दवाओं की ऊंची कीमतें क्या हम इस बारे में कुछ कर सकते हैं?
सुदीप चौधरी

भारत में सबके लिये स्वास्थ्य सुविधाएं संसाधन उपयोग एवं नीति मानदंड
अजय महल

डिजिटल प्रौद्योगिकी से ग्रामीण भारत का कायाकल्प
उमा गणेश

विशेष आलेख
सतत प्रगति की रणनीतियां
अरुण मायरा

आर्थिक विकास वर्ष 2004 से 2012 तक भारत में प्रति व्यक्ति आय लगभग तीन गुना बढी है।

पिछले नौ वर्ष के दौरान प्रतिव्यक्ति आय में औसतन 20 प्रतिशत सालाना का इजाफा हुआ है जो इसी अवधि में उपभोक्ता मूल्य सूचकांक की वृद्धि के मुक़ाबले काफी अधिक है।

औसतन जीडीपी विकास दर

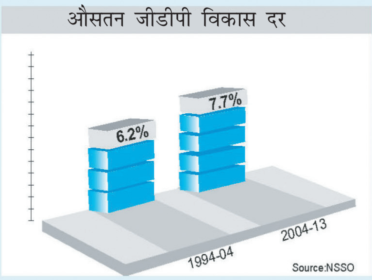

स्रोत : एनएनएसओ

दो वैश्विक मंदी के बावजूद देश की औसतन जीडीपी विकास दर 2004-05 से 2013-14 में 7.7 प्रतिशत रही है।

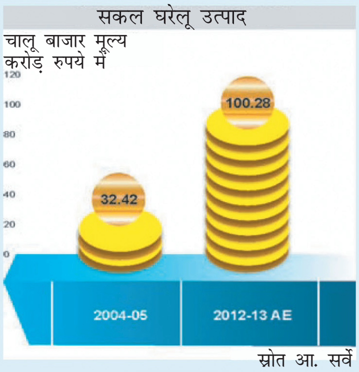

पिछले नौ वर्ष के दौरान चालू मूल्यों पर भारत की जीडीपी लगभग तीन गुना बढ़ी है।

समग्र विकास की नीतियों के कारण 11वीं पंचवर्षीय योजना 2007-12 के दौरान कृषि में वास्तविक मजदूरी 6.8 प्रतिशत बढ़ी है जबकि 9वीं और 10वीं पंचवर्षीय योजना के यह मात्र 1.1 प्रतिशत थी।

कृषि विकास दर भी लगातार बढ रही है। 10वीं और 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान यह क्रमश: 2.5 प्रतिशत और 3.7 प्रतिशत रही है। 12वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान इसकी वृद्धि 4 प्रतिशत तय की गई है।

वित्तीय समावेशन

पेंशन फंड के तहत खाता की संख्या वर्ष 2002-03 के चार करोड़ से बढ़कर वर्ष 2011-12 में 16 करोड़ से अधिक हो गए। पेंशन फंड में कर्मचारियों का कुल नामांकन 3.95 करोड़ से बढ़कर 8.85 करोड़ हो गया। फिलहाल ज्यादा से ज्यादा लोग बैंकिंग सुविधाओं का इस्तेमाल कर रहे हैं। वाणिज्यिक बैंकों की शाखाओं की संख्या 53 हज़ार से बढ़कर वर्ष 2004 तक 88 हज़ार से ज्यादा हो गई। पिछले वर्ष तक बैंक खातों की संख्या 43.97 करोड से बढ़कर 77.32 करोड़ दर्ज की गयी।

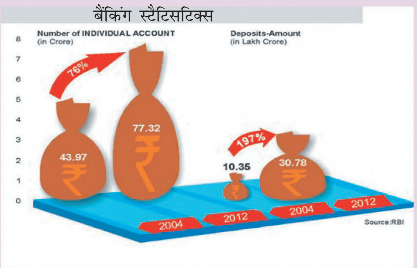

बैंकिंग रणनीति

पिछले सात साल के दौरान लघु, छोटे और मझौले उद्योगों को उधारी ओर ऋण सुविधाएं लगभग सात गुना बढ़ी है।

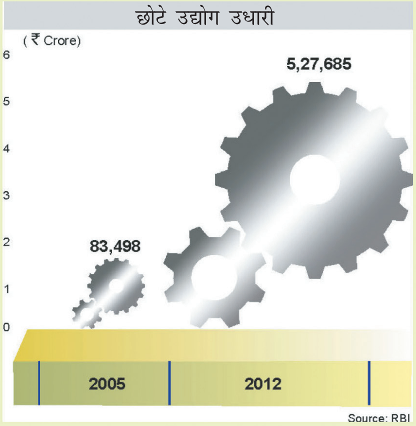

पिछले दो साल के दौरान प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम के तहत 80 हजार लघु उद्योगों को मदद दी गयी जिनसे 9.23 लाख लोगों के लिए रोजगार के अवसर उपलब्ध हुए।

वर्ष 2011-12 में ईपीएफ के खातों की संख्या 16-62 करोड तक पहुंच गयी।

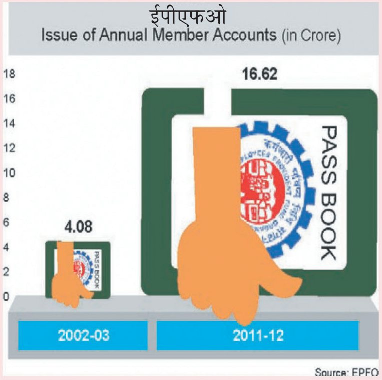

वर्ष 2013 में ईपीएफ के तहत कुल इकाई 7.3 लाख हो गयी जबकि वर्ष 2003 में यह मात्र 3.45 लाख थी।

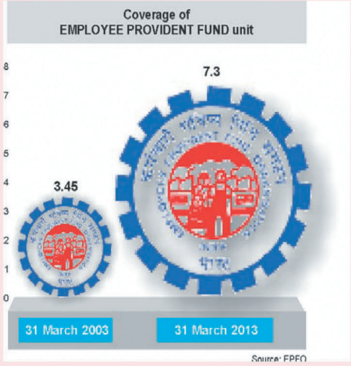

वर्ष 2004-12 के दौरान गरीबी में औसत दो प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से कमी आयी है जोकि इससे पिछले दशक की तुलना में दुगुनी है।

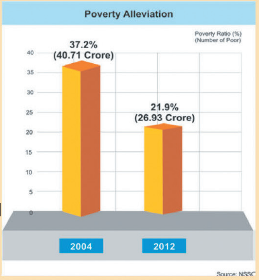

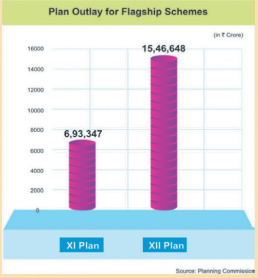

योजना

वर्ष 58 ● अंक 2 ● फरवरी 2014 ● माघ-फाल्गुन, शक संवत 1935 ● कुल पृष्ठ 56

प्रधान संपादक
राजेश कुमार झा

रेमी कुमारी

संपादकीय कार्यालय

yojanahindi@gmail.com
www.yojana.gov.in
www.publicationsdivision.nic.in

वी. के. मीणा

सूर्यकांत शर्मा

pdjucir@gmail.com

जी. पी. धोपे

इस अंक में

● – 5
● 6
● 13
● 18
● 22
● – 25
● 26
● 31
● 35
● 38
● 41
● 44
● 47
● 49
● – 51

योजना हिंदी के अतिरिक्त असमिया, बांग्ला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी, तेलुगु तथा उर्दू भाषाओं में भी प्रकाशित की जाती है। पत्रिका मंगवाने हेतु, नयी सदस्यता, नवीकरण, पुराने अंको की प्राप्ति एवं एजेंसी आदि के लिए मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर 'अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवा कर निम्न पते पर भेजें। व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन), प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड IV, तल VII, आर. के. पुरम, नयी दिल्ली-66 दूरभाष : 26100207, 26105590 तार : सूचनाप्रकाशन।

सदस्य बनने अथवा पत्रिका मंगाने के लिए आप हमारे निम्नलिखित बिक्री केंद्रों पर भी संपर्क कर सकते हैं : सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003 (दूरभाष : 24367260, 5610), हाल सं, 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 (दूरभाष : 23890205)* 701, सी- विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर, नवी मुंबई-400614 (दूरभाष : 27570686) * 8, एसप्लानेड, ईस्ट, कोलकाता-700069 (दूरभाष : 22488030), * 'ए' विंग, राजाजी भवन, बंसल नगर, चेन्नई-600090 (दूरभाष : 24917673) * प्रेस रोड नयी गवर्नमेंट प्रेस के निकट, तिरुअनंतपुरम-695001 (दूरभाष : 2330650) * ब्लॉक सं-4, पहला तल, गृहकल्प, एमजी रोड, नामपल्ली, हैदराबाद-500001 (दूरभाष : 24605383) * फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलुरु-560034 (दूरभाष : 25537244) * बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ, पटना-800004 (दूरभाष : 2683407) * हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, सेक्टर-एच, अलीगंज, लखनऊ-226024 (दूरभाष : 2225455) * अंबिका कॉम्प्लेक्स, फर्स्ट फ्लोर अहमदाबाद-380007 (दूरभाष : 26588669) के. के. बी. रोड, नयी कॉलोनी, कमान संख्या-7, चेनीकुटी, गुवाहाटी-781003 (दूरभाष : 2665090)

चंदे की दरें : वार्षिक: ₹ 100 द्विवार्षिक : ₹ 180, त्रैवार्षिक :₹ 250, विदेशों में वार्षिक दरें : पड़ोसी देश : ₹ 530, यूरोपीय एवं अन्य देश: ₹ 730। योजना में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने है। जरूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से संबद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषयवस्तु के लिए योजना उत्तरदायी नहीं हैं।

आपकी राय

पुरस्कारों पर विशेषांक निकालें

मैं *योजना* का 2008 से नियमित पाठक हूं। इसका प्रत्येक अंक महत्वपूर्ण, संग्रहणीय एवं उपयोगी होता है। मानो यह कहता है कि आइए। खरीदिए, पढ़िए और हमें समझने की कोशिश कीजीए।

मैं जब भी *योजना* लेने पुस्तक विक्रेता के पास जाता हूं तो वे लोग कहते हैं कि तुम *योजना* लेकर क्या करोगे अभी तो तुम्हारी उम्र बाल पत्रिका पढ़ने की है। मैंने उन्हें उत्तर दिया, "विचारों के युद्ध में पुस्तकें ही शस्त्र होते हैं।"

मैंने अपनी छोटी-सी उम्र में ही दिल्ली के प्रगति मैदान तक भ्रष्टाचार, जातिवाद, समाजवाद, सभ्यता और संस्कृति जैसे विषयों पर गूढ़ व्याख्यान दिया। इसके पीछे योगदान तो इसी *योजना*, कुरुक्षेत्र, और *आजकल* जैसी पत्रिकाओं का रहा है।

दूसरी बात रही हमें कोर्स की किताबों पर ध्यान देने की तो उसमें मैं अपना पक्ष रखना चाहूंगा कि कोर्स की किताबों और *योजना* में तुलना करना उचित नहीं होगा।

योजना के दिसंबर अंक में सचित्र आलेख अच्छे लगे, परंतु एक चीज मैं संपादक महोदय से कहना चाहूंगा कि एक अंक में भारत सहित संपूर्ण विश्व में दिए जाने वाले प्रमुख पुरस्कारों के बारे में प्रकाशित करें।

हमें इंतजार रहेगा। आपका बाल पाठक

जानदार प्रस्तुतियां

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून 2013 के बारे में बहुत हीं सटीक और तर्कपूर्ण लेख पढ़ने का अवसर मिला जोकि प्रशंसनीय है। इस कानून के बन जाने से अब देश में कोई भूख से दम नहीं तोड़ेगा और उसे भी जीने की मोहलत मिल सकेगी। आपने सही लिखा है कि लाखों लोग आज भी गरीब हैं, और उनकी कुल आमदनी का बड़ा हिस्सा भोजन पर खर्च होता है। इसी बात को ध्यान में रखकर सार्वजनिक वितरण प्रणाली की शुरुआत अपने देश में की गई थी जिसका लाभ कुछ अपवादों को छोड़कर देश की जनता ले रही हैं। इस सुविधा की मांग काफी समय से नीतिकारों द्वारा की जा रही थी। अब आम आदमी भी भूख से ऊपर उठकर अपने बेहतर भविष्य के बारे में सोच सकेगा। प्रांजल धर का आलेख 'रोकना ही होगा खाद्य अपव्यय' को एवं 'इसरो की ऊंची उड़ान' जैसी प्रस्तुतियां भी जानदार रही।

छैलबिहारी शर्मा इंद्र
छाता, उ. प्र.

शौचालय सर्वसुलभ हो

मैं *योजना* का अप्रैल 2009 से नियमित पाठक हूं। 'खाद्य सुरक्षा का अधिकार' पर केंद्रित दिसंबर 2013 अंक काफी ज्ञानवर्धक, महत्वपूर्ण समस्या के प्रति ध्यान दिलाने वाला तथा विचारणीय लगा। संपादकीय हर बार की तरह ज्ञानवर्धक और उत्साह भरने वाला रहा। वर्तमान में संपूर्ण विश्व के समक्ष खाद्य संकट ने विकराल व भीषण समस्या का रूप धारण कर लिया है जिसके परिणामस्वरूप खाद्य सुरक्षा का ख़तरा मंडरा रहा है। देश की संपूर्ण जनसंख्या को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के लिए खाद्य की भौतिक उपलब्धि आवश्यक है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर भारत सरकार ने 'राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा 2013' बनाया है, जिसके अनुसार प्राथमिकता वाले परिवार को प्रतिमाह 5 कि. ग्रा. अनाज और अंत्योदय परिवारों को 35 कि. ग्रा. अनाज-चावल, गेहूं और मोटे अनाज क्रमश: 3 रुपये, 2 रुपये और 1 रुपया प्रति कि.ग्रा. की दर से दिया जाएगा। यह कानून बनाने के साथ ही भारत खाद्य सुरक्षा पर कानून बनाने वाला पहला देश बन गया है।

भारत सरकार द्वारा 1969 में 'अधिक अन्न उपजाऊ आंदोलन' का सूत्रपात किया गया। इसके बाद 1960 के दशक में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के नेतृत्व में हरित क्रांति का शुभारंभ हुआ। नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) में भी स्पष्ट रूप से खाद्य सुरक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। गरीब परिवारों को खाद्य सुरक्षा उपलब्ध कराने के लिए सरकार ने 1997 में लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली लाग की जिसके अंतर्गत दोहरी कीमत प्रणाली संरचना को क्रियान्वित किया गया। केंद्र सरकार ने भूखमरी की त्रासदी को ध्यान में रखकर 2001 में पंचायत स्तर पर खाद्यान बैंकों की स्थापना करने की घोषणा की ताकि देश को भुखमरी, कुपोषण व अन्य पोषण जैसी भयावह समस्याओं से मुक्ति मिल सके।

खाद्य सुरक्षा कानून 2013 को लागू करने में चुनौतियां भी बहुत हैं। प्रथम, बिहार, उत्तर प्रदेश, झारखंड सहित देश के अधिकतर राज्यों में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों की

सूची का निर्धारण सही तरीके से नहीं हो पाया है। जब तक सूचियों का निर्धारण सही से नहीं होगा, तब तक इस कानून से कुछ खास असर नहीं पड़ेगा। दूसरा, धन की समस्या हैं क्योंकि इस कानून को लागू करने में व्यय होने वाली रकम भारी-भरकम हैं। सरकार इसके लिए अतिरिक्त संसाधन जुटाने होंगे। तीसरी, ग्रामीण क्षेत्रों में पीडीएस दुकानों की स्थिति अच्छी नहीं हैं। पीडीएस दुकानों द्वारा दिया जाने वाला अनाज निम्न श्रेणी की होती हैं। दुर्गम क्षेत्रों में तो वह भी नहीं मिलता है। यह कानून कुपोषण को खत्म कर पाएगा इस पर संशय की स्थिति हैं एक अनुमान के अनुसार एक वर्ग किलोमीटर के दायरे में लगभग 200 व्यक्ति खुले में शौच करते हैं। जब तक इस पर काबू नहीं पाया जाएगा, तब तक भोजन खपत में बढ़ोतरी का कुपोषण पर मामूली अंतर पड़ेगा। प्रत्येक घर में शौचालय की व्यवस्था होना अनिवार्य रूप से होनी चाहिए। निष्कर्षत: कहा जा सकता हैं कि यह कानून भूख और कुपोषण को खत्म करने में रामबाण हो सकता हैं।

भ्रष्टाचार की दीमक से बचें

यो*जना* का दिसंबर अंक पढ़ा। 'खाद्य सुरक्षा का अधिकार' पर विशेषांक काफी पंसद आया। अंक के आलेख 'खाद्य सुरक्षा कानून : क्या भूख और कुपोषण का खात्मा कर पाएगा?, 'खाद्य सुरक्षा : अधिकार एवं चुनौतियां', 'खाद्य सुरक्षा : पोषण और जनस्वास्थ्य', 'रोकना ही होगा खाद्य अपव्यय को', 'मोटे अनाजों के प्रति बदलनी होगी मानसिकता', 'खाद्य सुरक्षा द्वारा महिला सशक्तीकरण का प्रयास', 'भूखे बचपन के लिए खाद्य सुरक्षा', 'भारत में खाद्य सुरक्षा : अतीत और वर्तमान', खाद्यान्न उपलब्धता एवं भावी संकट आदि लेख बहुत अच्छे हैं।

हमारे देश में गरीबी के कारण आज भी सैकड़ों लोग भूखे सोने को मज़बूर हैं और कईयों को भरपेट भोजन नहीं मिल पाता। सैकड़ों बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। झोपड़ियों में लाखों की तादाद में ऐसे लोग रहते हैं, जो काफी कम आमदनी में अपना गुजर-बसर करते हैं। छोटे-छोटे बच्चे पन्नी, टूटे प्लास्टिक के टुकड़ों को कूड़े के ढेर में बीनते देखे जा सकते हैं, जो दिनभर कूड़ा बीनने का काम करते हैं फिर भी उन्हें भरपेट भोजन नसीब नहीं हो पाता। उनका बचपन यूं ही बरबाद हो जाता है। शादियों और विभिन्न पार्टियों और धार्मिक कार्यक्रमों में भी काफी खाना बरबाद हो जाता हैं, क्योंकि लोग आवश्यकता से ज्यादा खाना ले लेते हैं और फिर बचा हुआ खाना कूड़े में फेंक दिया जाता है। जितना खाना शादियों में बरबाद होता है, उस खाने से सैकड़ों लोगों का पेट भरा जा सकता हैं। शादियों और पार्टियों में लोगों की संख्या सीमित की जानी चाहिए। ताकि खाना भी कम मात्रा में बने और बरबादी भी कम हो।

आज खेती की जमीन का अधिग्रहण करके इमारतें, फैक्ट्रियां बना दी गई हैं। जिससे खेती योग्य भूमि का काफी नुक़सान हुआ है। अब नया भू-कानून आ गया है, जिससे खेती की भूमि का जबरन अधिग्रहण खत्म हो जाएगा। कृषि भूमि कम होने से उत्पादन में भी भारी असर पड़ता है। जिससे खाद्य सुरक्षा पर भी असर पड़ता है। कई बार देखा गया है, कि सरकारी सस्ते गल्ले की दुकान पर भी दुकानदार हेरा-फेरी करते हैं। जैसे कि कम तोलना, राशन की काला बाजारी करना, समय पर दुकान ना खोलना, ठीक से राशन वितरण ना करना, गरीब लाभार्थियों के हक़ का राशन हड़प कर जाना, जिसके चलते गरीबों को उनके हक़ का राशन या तो बिल्कुल नहीं मिलता और मिलता भी है, तो पूरा नहीं मिल पाता। सरकार को सरकारी राशन की दुकानों का समय-समय पर निरीक्षण कराते रहना चाहिए, तथा लाभार्थियों से भी पूछना चाहिए, कि क्या उन्हें राशन ठीक से और पूरा मिल रहा है? दिहाड़ी मजदूर, रिक्शेवाले, फेरी वाले जैसे गरीब तबके के लोगों को पूरे महीने भर का अनाज भी भरपूर नहीं मिल पाता। महंगाई की मार के कारण गुजारा करना काफी मुश्किल होता है। ऊपर से बीमारी व अन्य ख़र्चे अलग हो जाते हैं। सर्वप्रथम महंगाई को नियंत्रित करने के प्रयास करने जरूरी हैं। अगर महंगाई नियंत्रित हो जाएगी तो देश के गरीब तबके की जनता को राहत मिल जाएगी। खाद्य सुरक्षा का अधिकार कानून वैसे तो काफी अच्छा कदम है, देश की गरीब जनता के लिए। परंतु भ्रष्टाचार का दीमक इस खाद्य सुरक्षा के अधिकार को भी ना लग जाए इसके प्रयास भी अवश्य करने होंगे।

योजना
आगामी अंक

मार्च 2014

प्रशासनिक सुधार

अप्रैल 2014 (विशेषांक)

भारतीय अर्थव्यवस्था-प्रदर्शन, चुनौतियां एवं संभावनाएं

संघ/राज्य लोक सेवा आयोग (प्रारम्भिक) परीक्षा हेतु

प्रथम प्रश्न-पत्र

1523	सिविल सेवा प्रा. परीक्षा सामान्य अध्ययन
1524	सिविल सेवा प्रा. परीक्षा सामान्य अध्ययनः हल प्रश्न–पत्र
847	भारत का इतिहास एवं भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन
849	भारतीय राजव्यवस्था एवं भारत का संविधान
A1076	भूगोल
850	विश्व एवं भारत का भूगोल
A1091	भारतीय अर्थव्यवस्था
851	भारतीय अर्थव्यवस्था
A1089	सामान्य विज्ञान
853	सामान्य विज्ञान
172	भारतीय कला एवं संस्कृति
A1090	पारिस्थितिकी, पर्यावरण, जैव–विविधता एवं विज्ञान–प्रौद्योगिकी
1393	सिविल सेवा प्रा. परीक्षा सामान्य अध्ययनः प्रैक्टिस वर्क-बुक

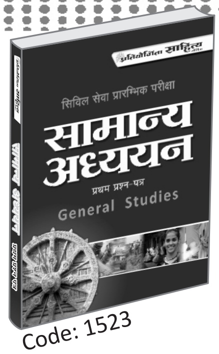

Code: 1523

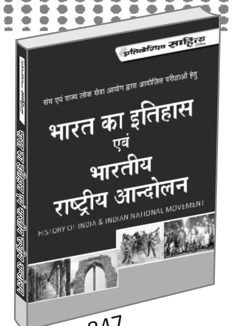

Code: 847

द्वितीय प्रश्न-पत्र

A1077	सिविल सर्विसेज एप्टीट्यूड टेस्ट
A1080	तार्किक एवं विश्लेषणात्मक योग्यता
A1078	समंक व्याख्या एवं पर्याप्तता
A1096	मौलिक आंकिक योग्यता
852	सामान्य मानसिक योग्यता
766	सामान्य बुद्धि एवं तर्कशक्ति परीक्षण
A723	तर्कशक्ति परीक्षण
A939	सामान्य बुद्धि एवं तर्क परीक्षण

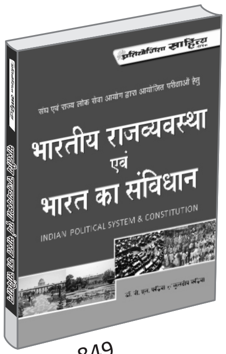

Code: 849

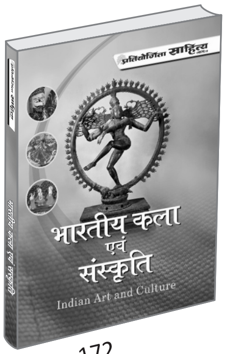

Code: 172

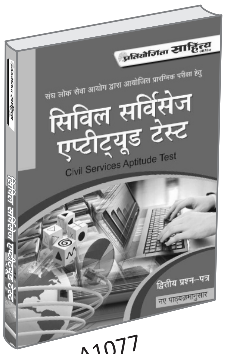

Code: A1077

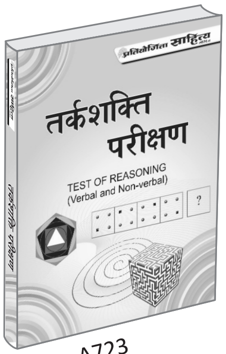

Code: A723

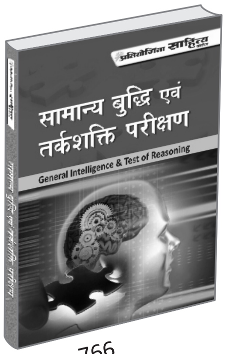

Code: 766

मुख्य परीक्षा हेतु

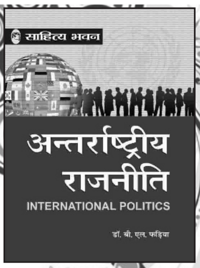

Code: 057

Code: 085

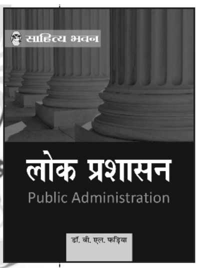

Code: 059

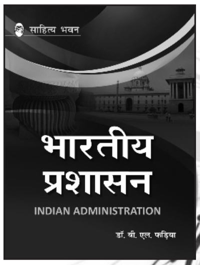

Code: 1333

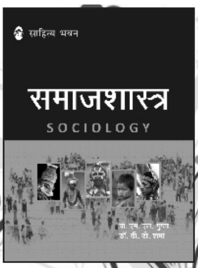

Code: 096

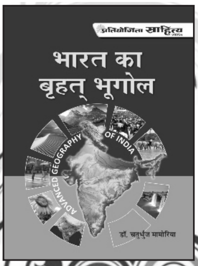

Code: 298

प्रतियोगिता साहित्य सीरीज

For More information Call : +91 89585 00222 info@psagra.in www.psagra.in

YH-251/2014

संपादकीय

बीमारी-एक रूपक

बीमारी की क्या परिभाषा है? स्वास्थ्य किसे कहते हैं? शायद ये सवाल हमें अजीब से लगें लेकिन यह एक तथ्य है कि स्वास्थ्य और बीमारी की अवधारणा लंबे समय से मानव मात्र को भ्रमित करती रही है। वास्तव में बीमारी और इसके पूरक विचार स्वास्थ्य की अवधारणा लोगों के सांस्कृतिक और सामाजिक परिवेश की कुछ विशिष्ट मान्यताओं में निहित होती है। किसी एक सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में स्वस्थ व्यक्ति अन्य सामाजिक संदर्भ में बीमार कहला सकता है। यहां स्वास्थ्य के बारे में जो सार्वभौमिक मान्यताएं हैं उससे इंकार नहीं किया जा रहा है लेकिन इस अवधारणा की जटिलता को रेखांकित किया जा रहा है। स्वास्थ्य और रोग के संबंध में स्वीकृत अवधारणाएं काफी हद तक इनके बारे में व्यक्ति, समाज और सरकार द्वारा अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण और नीतियों को भी प्रभावित करती है। यह इस बात से भी परिलक्षित होता है कि आधुनिक समय में बीमारी की परिभाषाओं में कई नई श्रेणियां शामिल हो गई हैं। अवसाद, मोटापा, पठन मनोविकार (डिस्लेक्सिया), ध्यान केंद्रित करने में असमर्थता और क्षुधानाश इसी प्रकार की बीमारियां हैं। इसी प्रकार कुछ ऐसी भी शारीरिक स्थितियां हैं जिन्हें पहले बीमारियों की श्रेणी में गिना जाता था लेकिन अब उन्हें बीमारी नहीं माना जाता।

चिकित्सा की प्राचीन भारतीय प्रणाली आयुर्वेद के अनुसार बीमारियों का मूल कारण कफ, पित्त और वात के मूल तत्वों में असंतुलन का होना है जबकि चीन की स्वास्थ्य प्रणाली में यह माना जाता है कि मानव शरीर में यिन और यांग की समरसता में व्यवधान ही बीमारियों को जन्म देता है। इसके विपरीत, आधुनिक स्वास्थ्य प्रणाली बीमारियों के जीवाणु सिद्धांत में विश्वास करती है। जीवाणु और कोशिकीय स्तर पर स्वास्थ्य और बीमारियों के गहन अध्ययन की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हो रही है। उनसे निकट भविष्य में स्वास्थ्य और बीमारियों के बारे में हमारे विचारों में मूलभूत परिवर्तन आ सकता है परंतु सामान्य तौर पर और एक विशेष अर्थ में, स्वास्थ्य को 'अंगों के शांत होने' और बीमारी को 'उनके विद्रोह' के रूप में समझा जा सकता है। बीमारी केवल व्यक्ति द्वारा भोगी जाने वाली पीड़ा ही नहीं है बल्कि इसे आंशिक रूप से इस प्रकार समझा जा सकता है कि जमाने ने 'पीड़ित के साथ क्या सलूक किया है।

जैसा कि प्रख्यात अमरीकी लेखक सुसान सोन्टाग ने कहा है कि 'बीमारी वास्तव में एक रूपक है।' परंतु यह रूपक केवल व्यक्तिगत भावनाओं और अनुभवों तक ही सीमित नहीं है। दरअसल, बीमारियां व्यक्ति और समाज के अंतर्संबंधों के विभिन्न आयामों को प्रतिबिंबित करने वाला आईना भी होती है। उदाहरण के लिए अमरीका और अन्य विकसित देशों में दवाओं पर ख़र्च होने वाले धन का एक बड़ा हिस्सा मादक द्रव्यों, नींद की गोलियों और मानसिक बीमारियों का इलाज करने वाली इसी प्रकार की अन्य दवाओं में जाता है। दूसरी ओर अफ्रीका और एशिया के विकासशील देशों में लाखों बच्चे अतिसार और कुपोषण से काल कवलित हो जाते हैं। इन देशों में क्षय रोग अभी भी घातक रोग बना हुआ है हालांकि इसके इलाज के लिए सस्ती और प्रभावी दवाइयां मौजूद हैं। इन तथ्यों से हमें इन समाजों को समझने के लिए अंतर्दृष्टि मिलती है।

लोगों के स्वास्थ्य की स्थिति राज्य नीति की सफलता के मूल्यांकन का महत्वपूर्ण मानक है। व्यक्ति का स्वास्थ्य राष्ट्र के स्वास्थ्य को गहराई से प्रभावित करता है। ऐसा पाया गया है कि जनस्वास्थ्य की स्थिति देश के आर्थिक विकास को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। स्वास्थ्य कार्यक्रमों पर सार्वजनिक व्यय देश के विकास को गति देने में महत्वपूर्ण योगदान करता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक अध्ययन के अनुसार समय से पूर्व मृत्यु और असंचारी लोगों से होने वाली अशक्तता से, 2006 से 2015 की अवधि में, भारत को उसके सकल घरेलू उत्पाद के लगभग 2 खरब 37 अरब डॉलर की हानि होगी। यह विचारणीय है कि स्वास्थ्य सेवाओं पर सार्वजनिक व्यय संभवतः अन्य निवेशों की तुलना में बेहतर आर्थिक निवेश है।

यह दुखद सत्य है कि प्रतिवर्ष लगभग 3 करोड़ 70 लाख लोग स्वास्थ्य सेवाओं पर भारी व्यय के चलते गरीबी रेखा के नीचे चले जाते हैं। स्पष्ट है, कि गरीबों के लिए स्वास्थ्य ही उनकी एकमात्र पूंजी होती है। बीमारी उन पर दोहरा बोझ डाल देती है। एक तो उनकी आय पर प्रभाव पड़ता है और दूसरे, स्वास्थ्य पर होने वाला ख़र्च उन्हें और भी गरीबी और कर्ज़ में डुबो देता है। यही समय है जब हमें डार्विन के सिद्धांत को उलट देना होगा और एक ऐसे समाज के निर्माण के लिए काम करना होगा जिसमें निर्बलतम और संभवतः सबसे अधिक बीमार को भी जीने का हक़ मिल सके। ❑

सभी लोगों को स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान करने के भारत के प्रयास

• सौमिल नागपाल

सार्वजनीन स्वास्थ्य कवरेज (यूएचसी) अर्थात सभी लोगों को स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया करना, एक ऐसी अवधारणा है, जो लोगों को बिना किसी आर्थिक परेशानी के आवश्यक सुविधाएं सुलभ कराती है। अतएव, इसमें स्वास्थ्य सुविधाओं की सुलभता, गुणवत्ता और आर्थिक संरक्षण निहित है। यूएचसी का ध्येय बेहतर स्वास्थ्य की स्थिति और विकास का फल हासिल करना, स्वास्थ्य संबंधी कारणों से कंगाल होने से लोगों को बचाना और उन्हें अधिक स्वस्थ एवं उत्पादक जीवन बिताने का अवसर प्रदान करना है। सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य के बाद के एजेंडे के तौर पर भी यूएचसी तमाम चर्चाओं में छाया रहा है। वर्ष 2015 के बाद के समन्वित वैश्विक लक्ष्य के वैकासिक एजेंडे में भी इसकी प्रमुखता बनी हुई है।

हाल के वर्षों में, विश्व के अनेक देशों ने अपने लोगों को यूनिवर्सल हेल्थ कवरेज यानी सभी लोगों को स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया कराने के लक्ष्य को लेकर गतिविधियां तेज़ कर दी हैं।

यूएचसी, स्पष्ट रूप से अब नीतियों का एक आवश्यक अंग बन चुका है। केंद्र और राज्य सरकारों में स्वास्थ्य क्षेत्र के बजट में वृद्धि की इच्छा बढ़ रही है। परंतु, सरकारी क्षेत्र में स्वास्थ्य संबंधी परिव्यय में वृद्धि की प्रतिबद्धता के बावजूद कुछ कठिन निर्णय अभी लिये जाने हैं। व्यक्तिगत स्वास्थ्य सेवा और जनसंख्या आधारित सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं के बीच संसाधनों का आवंटन करने का निर्णय कोई सरल काम नहीं हैं। इन सभी कार्यों के लिए फिलहाल धन का अभाव है।

हाल ही में अनुमोदित बारहवीं पंचवर्षीय योजना में देश में यूएचसी (सार्वजनिन स्वास्थ्य कवरेज) प्रणाली स्थापित करने के दीर्घकालिक लक्ष्य का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। योजना के अंत तक सार्वजनिक स्वास्थ्य परिव्यय में, प्रतिवर्ष सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के लगभग एक प्रतिशत की महत्वपूर्ण वृद्धि हासिल करने का लक्ष्य रखा गया है। अब तक, भारत के स्वास्थ्य क्षेत्र के समक्ष जो चुनौतियां रही हैं, उनमें सरकार की ओर से अपर्याप्त धनराशि का आवंटन, सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं में जवाबदेही का अभाव और अपनी जेब से खर्च करने की बढ़ती मज़बूरी प्रमुख हैं। परंतु हाल के वर्षों में, देश में केंद्र और राज्य सरकारों ने कुछ ऐसे क़दम उठाए हैं, जिसका उद्देश्य इनमें से कुछ चुनौतियों का निराकरण करना है। साथ ही, देश के निर्धन और कमज़ोर वर्गों के लोगों को विशेषत: स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया कराना और उनमें सुधार लाने के लिये भी पहल की गई है। प्रस्तुत आलेख में आगे चलकर इन विषयों पर चर्चा की गई है।

भारत में स्वास्थ्य क्षेत्र हेतु वित्त की व्यवस्था

भारत में लंबे समय से स्वास्थ्य क्षेत्र पर कम धन का आवंटन और व्यय किया जाता रहा है। वर्ष 2008-09 में देश में स्वास्थ्य क्षेत्र पर जीडीपी का लगभग 4 प्रतिशत अथवा प्रतिव्यक्ति 40 अमरीकी डॉलर व्यय हुआ। वैश्विक स्वास्थ्य परिव्यय में, विश्व की जनसंख्या में 17 प्रतिशत से अधिक की हिस्सेदारी वाले देश भारत का अंशदान 1 प्रतिशत से भी कम रहा है। स्वास्थ्य व्यय का अंश देश की गतिशील आर्थिक वृद्धि

चित्र-1

शासकीय स्वास्थ्य परिव्ययः केंद्रीय एवं राज्य (जीडीपी प्रतिशत)

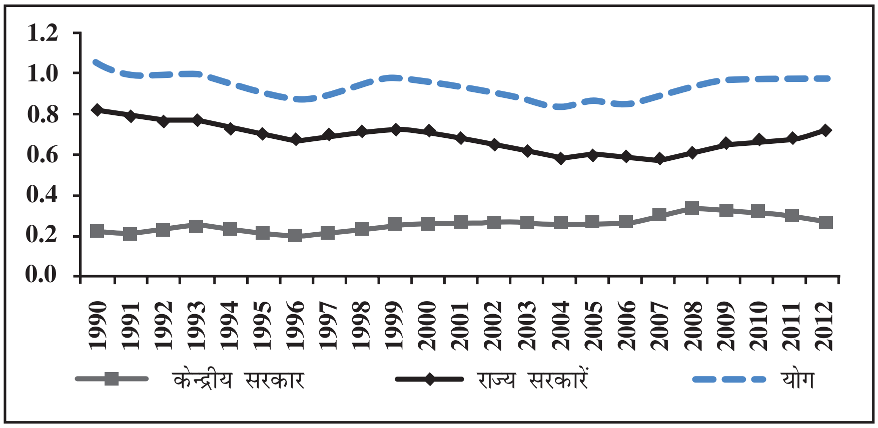

स्रोतः केंद्रीय बजट दस्तावेज और आरबीआई राज्यों की वित्तीय रिपोर्टों का अध्ययन

दर के साथ कदम नहीं मिला सका है। भारत का कुल स्वास्थ्य-व्यय 2001-02 में जीडीपी का 4.8 प्रतिशत था, जो इसके बाद से निरंतर कम होता जा रहा है। पिछले दो दशकों में स्वास्थ्य पर सार्वजनिक व्यय, जीडीपी के प्रतिशत के तौर पर घटता बढ़ता रहा है। इस दौरान यह दर औसतन जीडीपी के 1 प्रतिशत के बराबर रही है, (देखें चित्र-1)। वर्ष 2005 में सरकार (केन्द्र, राज्य और स्थानीय) के स्रोतों से कुल पांचवें हिस्से का (20 प्रतिशत) का ही व्यय हुआ जबकि लगभग 70 प्रतिशत राशि लोगों को अपनी जेब से ख़र्च करनी पड़ी। अपनी ओर से ख़र्च करने का इस राशि का प्रतिशत विश्व में सबसे अधिक है। यद्यपि हाल के वर्षों का कोई अधिकृत अनुमान उपलब्ध नहीं है, फिर भी विश्व स्वास्थ्य संगठन का अनुमान है कि सरकारी व्यय का अंश 30 प्रतिशत और अपनी जेब से ख़र्च का प्रतिशत 2011 में करीब 60 प्रतिशत रहा। वर्ष 2005 की तुलना में इसमें उल्लेखनीय सुधार हुआ है। परंतु अभी भी यह देश के सामाजिक आर्थिक विकास के स्तर के लिहाज़ से काफी अधिक है।

चित्र-1 में भारत की स्वास्थ्य सेवा प्रणाली के प्रमुख अंगों के निमित्त दी गई धनराशि का विवरण दर्शाया गया है। इसका वर्गीकरण वर्ष 2005 में, राष्ट्रीय स्वास्थ्य खातों के वर्गीकरण अर्थात स्रोतों, अभिकर्ताओं (एजेंट्स) और प्रदाताओं के आधार पर किया गया है। इससे उन संदर्भों का भी पता चलता है, जो इन कार्यक्रमों के मूल में है। मोटे तौर के संकेतक प्रमुख वित्तीय प्रवाहों को दर्शाते हैं।

भारत में स्वास्थ्य के लिये धनराशि जुटाना और उसको लोगों तक सही ढंग से पहुंचाना अर्थात स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने का कार्य चार प्रमुख और अधिकांशत: समानांतर रेखाओं के साथ-साथ विकसित हुआ है। पहला और सबसे बड़ा है परिवारों द्वारा अपनी जेब से ख़र्च करना (चित्र-2 में मोटा तीर का चिह्न)। यह लगभग पूरा खर्च निजी सेवा प्रदाताओं की सेवा की फीस पर किया गया है। परंतु इसमें से कुछ अंश सरकारी अस्पतालों में उपयोगकर्ता की फीस के

चित्र-2

भारतीय स्वास्थ्य प्रणाली में वित्तीय प्रवाह

भारतीय स्वास्थ्य प्रणाली में प्रमुख पात्र एवं कोष प्रवाह, वर्ष 2005

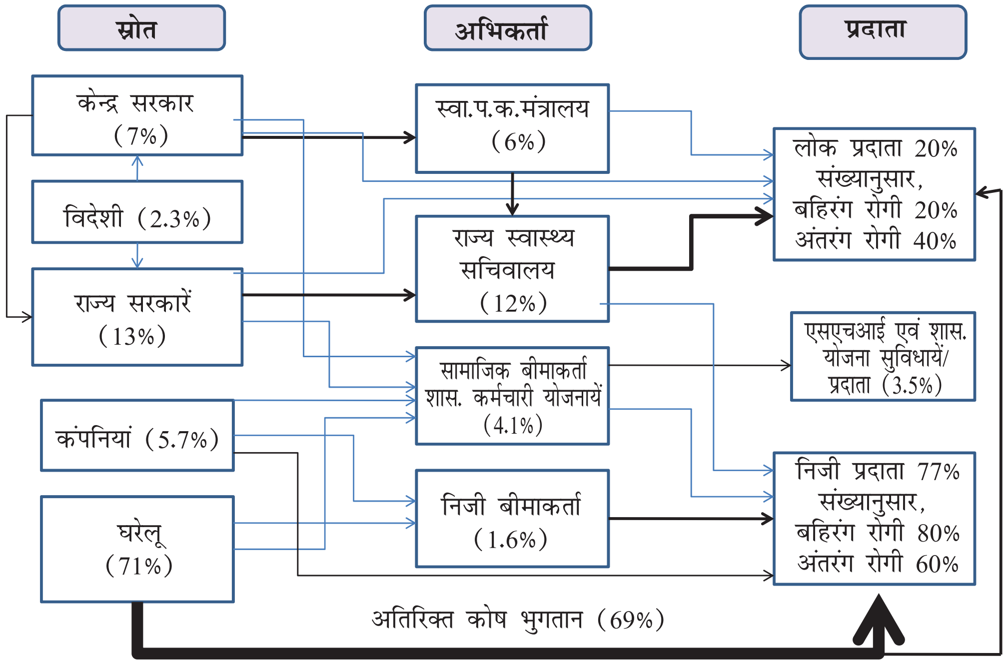

वर्ष 2008

(विश्व स्वास्थ्य ब्योरा)

- छोटा

(क) अन्य केंद्रीय मंत्रालयों द्वारा किया गया व्यय भी सम्मिलित है।

(ख) स्थानीय सरकारों द्वारा किया गया व्यय भी शामिल है। (कुल व्यय का 1%)

(ग) उपयोग में ली गई मात्रा की ओर संकेत करता है।

(घ) रेलवे और रक्षा मंत्रालयों जैसी अन्य सरकारी कर्मचारी कार्यक्रम सम्मिलित हैं।

वर्ष 2004-05 के राष्ट्रीय स्वास्थ्य खाते (स्वा. एवं प.क. मंत्रालय, 2009) और लेखक के मूल्यांकन पर आधारित

स्रोत : ला फोर्जिया और नागपाल (2012)

तौर पर ली गई होती है। इस प्रकार का वित्त-पोषण निर्धन परिवारों के लिये बड़ा बोझ बन जाता है और इसे भारत में दरिद्रता का एक बड़ा कारण माना जाता रहा है।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (एन एस एस ओ)के अनुसार लगभग 80 प्रतिशत बहिरंग (आउटडोर) रोगी और 60 प्रतिशत अंतरंग (भर्ती) रोगी निजी चिकित्सालयों और निदान केंद्रों की शरण लेते हैं। इससे पता चलता है कि स्वास्थ्य क्षेत्र पर होने वाले कुल व्यय का लगभग 77 प्रतिशत निजी सेवा प्रदाताओं को जाता है। इनमें दातव्य (खैराती) और अन्य गैर-लाभ कमाने वाले अस्पताल भी शामिल हैं।

दूसरा है, करों से प्राप्त आय में से आवंटित राशि से सीधे लोगों को स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान करना। सिद्धांत रूप से भारत की पूरी जनसंख्या को यह सुविधा उपलब्ध है। मुख्यत: राज्यों द्वारा चलायी जाने वाली सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा प्रणाली में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एनआरएचएम) के अंतर्गत केंद्र प्रायोजित गतिविधियां भी सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च स्तरीय (विशेषज्ञ सेवाएं) भी सार्वजनिक क्षेत्र में संचालित होती हैं। इन सरकारी अस्पतालों और निदान एवं परीक्षण केंद्रों में देश के 40 प्रतिशत लोग बहिरंग रोगी के तौर पर और 20 प्रतिशत लोग भर्ती होकर स्वास्थ्य सुविधाएं प्राप्त करते हैं। भर्ती होने वाले रोगियों के प्रतिशत के मामले में राज्यों के बीच कुछ भिन्नता हो सकती है।

तीसरा वर्ग सरकारी कर्मचारियों और निजी क्षेत्र के विधिवत कर्मचारियों /श्रमिकों हेतु सामाजिक बीमा योजनाओं का है। ये कार्यक्रम सामान्यत: अनिवार्य होती है और इनके लिये धन की व्यवस्था कर्मचारियों और नियोक्ताओं के अंशदान से की जाती है। सरकार भी आंशिक योगदान सब्सिडी के रूप में देती है।

चौथा वर्ग है, स्वैच्छिक निजी बीमा (पीएचआई) का, जिसका उद्भाव 1980 के दशक में हुआ। परंतु वर्ष 2000 के बाद इसका तेजी से विस्तार हुआ है। वर्ष 2004-05 में कुछ स्वास्थ्य परिव्यय का 1.6 प्रतिशत पीएचआई के खाते में गया, जो 2008-09 तक बढ़ कर लगभग 3 प्रतिशत हो गया।

चित्र-3

जीडीपी के अंश और प्रतिव्यक्ति आय के संबंध में स्वास्थ्य पर लोक व्यय, 2008

जीडीपी के अंश बनाम प्रतिव्यक्ति आय के तौर पर लोक स्वास्थ्य व्यय

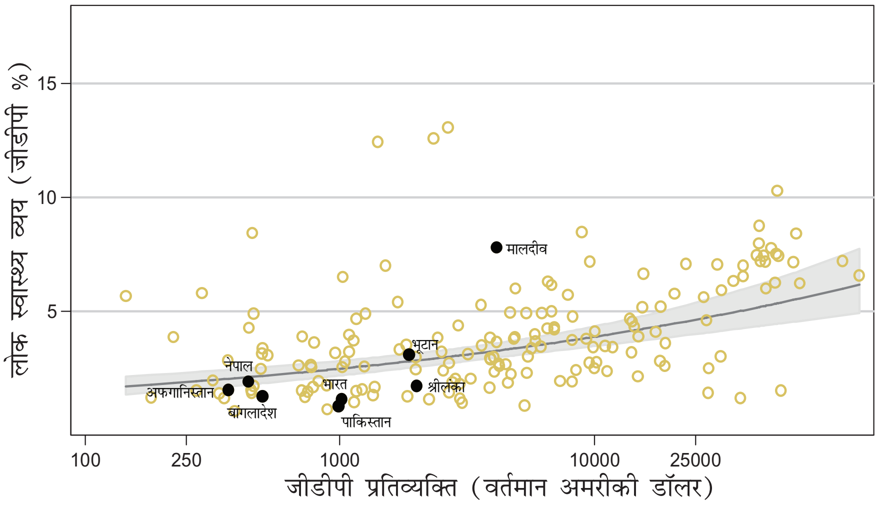

स्रोत : डब्ल्यूडीआई; डब्ल्यूएचओ

स्रोत : विश्व बैंक (2010)

स्वास्थ्य के लिये वित्त व्यवस्था और परिणाम

आय के समान स्तर वाले देशों में जीडीपी के अंश के तौर पर स्वास्थ्य के ऊपर सार्वजनिक व्यय के लिहाज़ से भारत विश्व के अपने समकक्ष देशों की तुलना में काफी निचले स्थान पर आता है। विश्व बैंक के अनुसार आय के वर्तमान स्तर पर, अधिकतर देशों में जीडीपी के अंश के हिसाब से, स्वास्थ्य पर होने वाला सार्वजनिक व्यय काफी अधिक है। चित्र-3 में इस स्थिति को एक ग्राफ के जरिये दिखाया गया है, जिसमें प्रत्येक वृत एक देश का प्रतिनिधित्व करता है। तुलना को सरल ढंग से प्रदर्शित करने के लिये दक्षिण एशिया को चिह्नित किया गया है।

विभिन्न राज्यों और सामाजिक समूहों में स्वास्थ्य कार्यक्रमों की सफलता के परिणामों में अभी भी भारी विषमताएं हैं। इन सेवाओं में आए सुधारों में समानता नहीं है। स्वास्थ्य के लिये जो सार्वजनिक सब्सिडी दी जाती है, उससे उन लोगों का अधिक लाभ हुआ है जिनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति बेहतर है। समाजशास्त्री पीटर्स और अन्य (2002) का अनुमान है कि 1990 के दशक के उत्तरार्ध में जहां सबसे कम आय वाले व्यक्ति पर एक रुपया खर्च किया गया, वहीं सबसे समृद्ध व्यक्ति पर लगभग 3रुपये ख़र्च किये गए। इस पृष्ठभूमि में, भारत की सार्वजनिक स्वास्थ्य कवरेज के ध्येय को प्राप्त करने के लिये लोक स्वास्थ्य व्यय की पर्याप्तता, प्रभाविकता, दर्शाता और समानता के मुद्दों पर ध्यान देना होगा।

स्वास्थ्य सुविधाओं को सर्वत्र सुलभ कराने वाले हाल के कार्यक्रम

भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य कवरेज की दिशा में, हाल ही में जो कदम उठाए गए हैं, उनकी विशेषता है कि ग्रामीण और जनसंख्या के सबसे निर्धन वर्ग को उसका लाभ दिलाने की प्राथमिकता दी गयी है। थोड़े से समय में ही अधिक से अधिक लोगों तक स्वास्थ्य सेवाएं

पहुंचाने में आई तेजी, इस प्रयास की विशेषता है।

इस संदर्भ में स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा संचालित राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एनआरएचएम) और श्रम एवं रोज़गार मंत्रालय द्वारा संचालित राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना (आरएसबीआई)विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन का नाम अब बदल कर राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (एनएचएम) हो गया है और अब शहरी क्षेत्रों में भी इसका विस्तार किया जा रहा हैं। इसके अतिरिक्त अनेक राज्यों में भी जन हितकारी स्वास्थ्य योजनाएं शुरू की गई हैं। आंध्र प्रदेश में राजीव आरोग्य श्री, कर्नाटक में वाजपेयी आरोग्य श्री कार्यक्रम, तमिलनाडु में मुख्यमंत्री की व्यापक स्वास्थ्य बीमा योजना, केरल में व्यापक स्वास्थ्य बीमा योजना, महाराष्ट्र में राजीव जीवनदायी, गुजरात में मुख्यमंत्री अमृतम, मेघालय में मेघा स्वास्थ्य बीमा योजना, छत्तीसगढ़ में मुख्यमंत्री स्वास्थ्य बीमा योजना और हिमाचल प्रदेश में चलाई गई राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना प्लस (आरएसबीआई) इसी प्रकार की योजनाएं हैं। विभिन्न राज्य सरकारें इसी प्रकार के कार्यक्रमों के माध्यम से समाज के निर्धन और कमज़ोर वर्गों के लोगों को बेहतर चिकित्सा, शल्य चिकित्सा समेत, सुविधाएं प्रदान कर रही हैं। इन कार्यक्रमों का निरंतर विस्तार भी हो रहा है।

ये सभी कार्यक्रम प्राय: एक ही समय में तैयार किए गए। पिछले 7-8 वर्षों में अस्तित्व मे आए इन कार्यक्रमों का कार्यान्वयन अलग-अलग संस्थाओं के माध्यम से होता है। इन कार्यक्रमों के लिये की गई वित्तीय व्यवस्था तथा उनकी प्रदायगी का दृष्टिकोण भी भिन्न है। परंतु उनमें कुछ समानताएं भी है, इन सभी का ध्येय सभी लोगों तक स्वास्थ्य सुविधाओं को पहुंचाना है, और देश के निर्धन एवं निर्बल वर्गो को बेहतर वित्तीय संरक्षण प्रदान करना है। इन स्वास्थ्य सुविधाओं का पूरा व्यय सरकार वहन करती है। इन सुविधाओं का लाभ उठाने के लिये लोगों को कोई ख़र्च नहीं करना होता है।

वर्ष 2005 में शुरू हुआ एनआरएचएम भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय का अग्रणी कार्यक्रम है, जिसका उद्‌देश्य देश में स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार करना हैं। संविधान के अनुसार स्वास्थ्य राज्यों का विषय हैं। परंतु केंद्र सरकार एनआरएचएम के जरिये राज्य सरकारों की स्वास्थ्य सेवाओं को सुदृढ़ बनाने में मदद करती है। एनआरएचएम के अंतगत राज्यों को अतिरिक्त संसाधन उपलब्ध कराए जाते हैं। यह कार्यक्रम मुख्यत: ग्रामीण क्षेत्रों, प्राथमिक देखभाल और लोक स्वास्थ्य कार्यक्रमों पर विशेष बल देता है। एनआरएचएम संस्थागत व्यवस्था की रचना में वित्तीय स्वायतता प्राप्त हो सके और धन के प्रवाह में तेज़ी आ सके। एनआरएचएम के प्रयासों से सेवा-प्रदायगी के क्षेत्र में कुछ अभिनव प्रयास हुए हैं। स्वास्थ्य, विशेषकर लोक स्वास्थ्य और प्राथमिक देखभाल के क्षेत्र में, केंद्र सरकार के निवेशों में उल्लेखनीय परंतु अभी भी अपर्याप्त वृद्धि हुई है। वित्तीय निवेश में उल्लेखनीय वृद्धि के अतिरिक्त अनुबंध पर काम करने वाले कर्मचारियों को काम पर रखने के नियमों में लचीलापन, आपूर्ति श्रृंखला में सुधार, निष्पादित कार्य के आधार पर भुगतान पाने वाले ज़मीनी कार्यकर्ताओं के संवर्ग की शुरुआत, वित्तिय प्रवाह की अभिनव व्यवस्था और लोक स्वास्थ्य परिव्यय बढ़ता। और, एनआरएचएम को इसके अस्तित्व मे आने के पूर्व की स्थिति से बिल्कुल अलग करते हैं।

सिद्धांत रूप से एनएचआरएम का लाभ कोई भी उठा सकता है। आय, क्षेत्र, स्थान और अन्य कारकों की परवाह किये बगैर जो कोई भी शासकीय स्वास्थ्य सेवा केंद्र (अस्पताल) में जा सकेगा, उसे वहां उपलब्ध सभी सेवाएं प्राप्त हो सकेंगी। आमतौर पर देश की 83 करोड़ 30 लाख की ग्रामीण जनसंख्या, और इनमें से एनआरएचएम के विशेष बल वाले राज्यों के 49 करोड़ लोग इस कार्यक्रम के लक्षित लाभार्थी हैं। उदाहरणस्वरूप, एनआरएचएम के सबसे बड़े घटक जननी सुरक्षा योजना में निर्धन महिलाओं को संस्थागत (अस्पतालों/स्वास्थ्य केंद्रों) मातृ एवं प्रसव सुविधाएं नि:शुल्क प्रदान की जाती है। महिलाओं को इसके साथ ही नकद राशि भी सहायता के तौर पर दी जाती

तालिका - 1

जीएसएचआईएस के अंतर्गत जनसंख्या कवरेज और अनुमानित वृद्धि 2003-04, 2009-10, एवं 2015 (10 लाख लोग)

योजना	2003-04	2009-10	2015
केंद्र सरकार			
कर्मचारी राज्य बीमा योजना (ईएसआईएस)	31	56	72
केंद्रीय सरकार स्वास्थ्य योजना (सीजीएचएस)	4.3	3	3
आरएसवीबाई	--	70	300
राज्य सरकार			
आंध्र प्रदेश, एपी राजीव आरोग्य श्री	--	70	75
तमिलनाडु, टी एन क्लाईनर	--	40	42
कर्नाटक, के. ए. वाजपेयी आरोग्यश्री	--	1.4	33
केए (यशस्विनी)	1.6	3	3.4
कुल सरकार प्रायोजित	37.2	243	528.4
व्यावसायिक बीमाकर्ता	15	55	90
महायोग (उपर्युक्त में नहीं शामिल अन्य)	55	300	630

स्रोत : योजना आंकड़ों पर आधारित लेखक का अनुमान

है। इस योजना से वर्तमान में एक करोड़ महिलाएं प्रतिवर्ष लाभ उठा रही हैं। प्रतिवर्ष 2 करोड़ 20 लाख से अधिक बच्चों को जवाबदेही भी आई है। प्रारंभ में निर्धनों तक स्वास्थ्य सुविधाएं पहुंचाने का प्रयास कर सार्वजनिक कवरेज के लक्ष्य को हासिल सुविधाओं का लाभ उठाने वालों की संख्या बढ़कर 63 करोड़ अर्थात कुल जनसंख्या के 50 प्रतिशत तक पहुंच जाएगी।

तालिका - 2

प्रस्तावित सेवाओं की अनुमानित लागत

प्रस्तावित सेवाओं के पैकेज की क्रमिक अनुमानित लागत, 2015

प्रस्तावित वित्त निवेश का स्रोत	प्रस्तावित कार्य एवं लक्ष्य समूह	प्रति परिवार प्रतिवर्ष इकाई	परिदृश्य	लाभार्थी परिवारों की संख्या (10 लाख)	परिदृश्य-1 500 प्रति व्यक्ति कर (करोड़ रु.)	परिदृश्य-2 1000 प्रति व्यक्ति कर (करोड़ रु.)
	मानक पैकेज (माध्यमिक एवं मातृ स्वास्थ्य सेवा) - बीपीएल	1,000	लागू नहीं	60	6,000	6,000
केन्द्रीय	पीएचसी निष्पादन आधारित प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा योजना - बीपीएल	500 1,000	(1) (2)	60	3,000	6,000
	केन्द्रीय सरकार योग, समस्त घटक				9,000	12,000
	उच्च स्तरीय स्वास्थ्य कार्यक्रम - बीपीएल	900	लागू नहीं	60	5,400	5,400
राज्य	मानक पैकेज (माध्यमिक एवं मातृ स्वास्थ्य कवरेज) निर्वल और गैर निर्धन	600	लागू नहीं	120	7,200	7,200
	पीएचसी कार्यनिष्पादन आधारित प्राथमिक स्वास्थ्य योजना - निर्वल और निर्धन	500 1,000	(1) (2)	120	6,000	12,000
	उच्च स्तरीय स्वास्थ्य कार्यक्रम: निर्वल-गैर निर्धन	900	लागू नहीं	120	10,800	10,800
	राज्य सरकारों की कुल लागत, सभी घटक			60 बीपीएल 120 निर्वल गैर निर्धन	29,400	35,400
	अनुमानित वार्षिक लागत : बीपीएल एवं निर्वल, गैर निर्धन हेतु सभी घटक (जनसंख्या का 77%)			180	38,400	47,400

स्रोतः लेखक का अनुमान (ला फोर्निया एवं नागपाल 2012)

रोगों से बचाव के टीके लगाए जाते हैं। (एनआरएचएम 2012) परंतु एनएसएसओ के 60 वें चक्र के आकड़ों के अनुसार यह भी तथ्य है कि 80 प्रतिशत से अधिक बहिरंग सेवाएं और 60 प्रतिशत अंतरंग (भर्ती रोगी) सेवायें अभी भी लोक स्वास्थ्य प्रणाली के बाहर ली जाती हैं।

वर्ष 2007 से राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना (आरएसबीवाई) और आंध्र प्रदेश की राजीव आरोग्य श्री से प्रेरित विभिन्न राज्यों के कार्यक्रमों जैसी सरकार प्रायोजित स्वास्थ्य बीमा योजनाओं (जीएसएचआईएस) ने स्वास्थ्य के क्षेत्र में जन संसाधनों के संचालन, आवंटन, प्रबंधन और उपयोग की दिशा में नये मापदंड कायम किये है और बेहतर व्यवस्था की है। सेवा प्रदायगी में अधिक करने के लिये नीचे के स्तर से कार्ययोजना तैयार की गई है। सरकार प्रायोजित स्वास्थ्य बीमा योजनाएं तेज़ी से आगे बढ़ी हैं। वर्ष 2012 तक लगभग 24 करोड़ भारतीय इन योजनाओं का लाभ उठा रहे थे जोकि देश की जनसंख्या का करीब 19 प्रतिशत है। निजी बीमा सुविधाओं और प्रकार के कवरेज का लाभ उठाने वालों को भी शामिल करके देखें तो वर्ष 2010 में 30 करोड़ से अधिक अर्थात देश की जनसंख्या के 25 प्रतिशत से अधिक लोग किसी न किसी प्रकार की बीमा योजना का लाभ उठा रहे थे।

वर्तमान प्रवृत्तियों के आलोक में, और यह मानकर कि सरकार की ओर से राजनीतिक तथा वित्तीय समर्थन जारी रहेगा, आशा है कि 2015 तक उपयुक्त स्वास्थ्य

भविष्य के दर्पण मेंः लोक स्वास्थ्य परिव्यय में अनुमानित वृद्धियां

सार्वजनिक स्वास्थ्य कवरेज की दिशा में हाल में हाल में किये गए प्रयास अब स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे हैं और इससे देश में स्वास्थ्य की राजनीतिक क्षेत्र में स्वीकार्यता भी बढ़ी है। फलस्वरूप देश के सबसे निर्बल वर्गो के लोगों को किफ़ायती, कम खर्चीली और बेहतर गुणवत्ता की स्वास्थ्य सुविधाएं पहुंचाने के लक्ष्य को पूरा करने के लिये ज़रूरी वित्तीय निवेश भी मिलने लगा है।

एनआरएचएम और आरएसवीवाई में केंद्र का पर्याप्त निवेश, इस योजना की घोषित रणनीति है। राज्यों के स्तर पर भी यही अपेक्षा है। विश्व बैंक ने व्यापक चर्चा और विमर्श के प्रारंभिक

भारत के पास क्या सार्वजनिक स्वास्थ्य कवरेज में निवेश के लिये वित्तीय सामर्थ्य है?

लोक स्वास्थ्य पर व्यय में वृद्धि के जो दो प्रस्ताव आलेख में बताए गए हैं उन पर सरकार को अनुमानत: जीडीपी का 0.4 वे 1.0 प्रतिशत अतिरिक्त व्यय करना होगें। इस अतिरिक्त निवेश का कम से कम एक चौथाई केंद्र सरकार से प्राप्त होगा, शेष राज्यों से। क्या भारत की आर्थिक स्थिति सार्वजनिक स्वास्थ्य कवरेज पर इस अतिरिक्त व्यय के लिये अनुकूल है?

भारत की वृहद आर्थिक संरचना आमतौर पर सुदृढ़ है। वर्ष 2010 में 10.4 की जीडीपी वृद्धि के साथ भारत विश्व की सबसे तेज़ी से बढ़ने वाली अर्थव्यवस्थाओं में शामिल हो गया है। वार्षिक जीडीपी वृद्धि दरें स्वास्थ्य के स्तरों पर परिभाषित होती है। इसी के साथ-साथ, सरकार ने वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिये प्रयास तेज़ करने का संकल्प व्यक्त किया है ताकि अगले पांच वर्षों में समन्वय सरकारी घाटा लगभग आधा कम किया जा सके। इस परिवेश में, स्वास्थ्य पर सार्वजनिक व्यय में वृद्धि करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य हो सकता है, बशर्ते राजस्व में उल्लेखनीय वृद्धि न हो।

अनेक ऐसे कारक हैं जिनसे यह संकेत मिलता है कि, नीति में महत्वपूर्ण उत्क्रमण (उतराव) अथवा अप्रत्याशित आर्थिक मंदी को छोड़कर, सार्वजनिक स्वास्थ्य कवरेज के लिये संसाधन जुटाने में केंद्र सरकार का अंशदान, लघु से मध्यम अवधि में हासिल होने योग्य है। इन सकारात्मक कारकों में शामिल है:-

अतीत की धर्म निरपेक्ष प्रवृत्तियां, ठोस आर्थिक विकास के दो दशक, आर्थिक विकास के सुदृढ़ अनुमान, केंद्रीय स्वास्थ्य व्यय में जीडीपी के संदर्भ में अधिक लचीलापन और सामाजिक संरक्षण नीतियों में निवेश के प्रति कांग्रेस के नेतृत्व वाले संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) सरकार की विश्वसनीय प्रतिबद्धता।

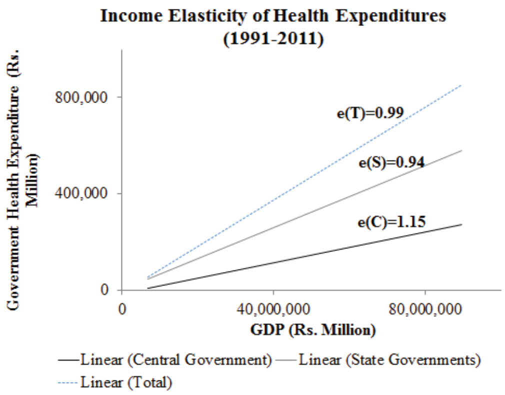

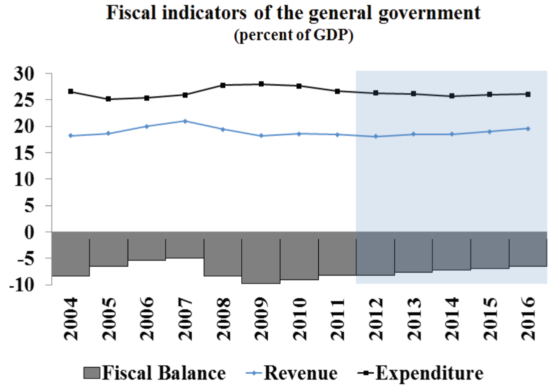

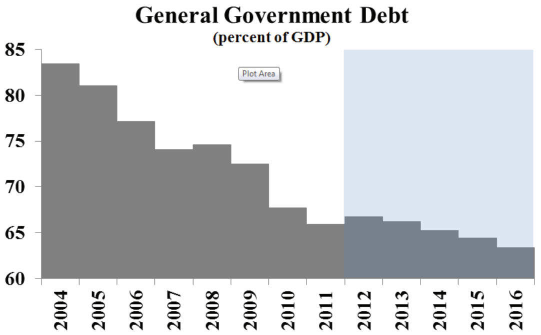

Source: IMF, WEO database October 2012

बिंदु के रूप मे, वित्तीय क्षमता के वास्तविक अनुमानों पर आधारित, सार्वजनिक स्वास्थ्य कवरेज की दिशा में आगे बढ़ने के लिए एक संभावित मार्ग का प्रस्ताव किया है। इसमें स्वास्थ्य क्षेत्र में वित्तीय निवेश की वर्तमान स्थिति, सेवा प्रदायगी की व्यवस्थाओं और एनआरएचएम तथा जीएसएचआईएस के अभिनव प्रयासों तथा अंतर्राष्ट्रीय अनुभवों से सबक लेने पर भी ध्यान दिया गया है। तालिका-2 में विश्व बैंक की एक एक रिपोर्ट (ला कोर्गिया एवं नागपाल,2012) से लिये गए आंकड़ें दिखाए गए है जिसमें अनुमान लगाया गया है कि अग्रलिखित परिस्थितियों में इस पैकेज़ की लागत जीडीपी को 0.4 से 0.5 प्रतिशत अतिरिक्त हो सकती है। यह दो संभावित स्थितियां है- बीपीएल (गरीबी रेखा से नीचे के लोगों, और देश की जनसंख्या के 77 प्रतिशत असुरक्षित गैर-निर्धन लोगों को कवरेज में सम्मिलित करना।

उपसंहार एवं निष्कर्ष

इन नये-नये यूएचसी कार्यक्रमों वे स्रोतों मे स्पष्ट विभाजन और कार्यक्रमों में विखंडन के बावजूद, इस बात की संभावना मौजूद है कि ये अलग-अलग कार्यक्रम एक-दूसरे के पूरक हो सकते है। यह दिलचस्प बात है कि प्रस्तुत आलेख में जिन कार्यक्रमों की चर्चा की गई है उनके कार्यक्षेत्र स्पष्ट रूप से परिभाषित है- एनआरएचएम के मामले मे प्राथमिक सेवा, आरएसबीवाई के मामले में मध्यम स्तर की स्वास्थ्य सेवा और राजीव आराग्य श्री के मामले में तीसरे या उच्च स्तर की चिकित्सा सेवां यद्यपि इन कार्यक्रमों के फोकस में जो अंतर है, वह उनके क्रमिक विकास की प्रकिया से जन्में हैं न कि उनके पीछे कोई योजनाबद्ध ढंग से तैयारी की गयी । इसके बावजूद दोनों में रोचक संपूरकता बनी हुई है। अतएव, यदि इन कार्यक्रमों में सहयोग और समन्वय और बढ़ सके तथा कार्यक्रमों के दायरो में आने वाली जनसंख्या को चिह्नित किया जा सके एवं उनके बीच सुचारू संपर्क बना रहे तो इन कार्यक्रमों का लाभ और व्यापक हो सकता है। प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च स्तरीय चिकित्सा सेवा के क्षेत्र में यदि इन कार्यक्रमों की संभावनाओं का पूरा लाभ मिले तो इनका योगदान और भी बेहतर हो सकता है। उदाहरणार्थ एनआरएचएम से समर्थित और संपुष्ट प्राथमिक चिकित्सा सेवाओं के मध्यम और उच्च स्तर की स्वास्थ्य बीमा कार्यक्रमों का प्रवेशद्वार बनने की अच्छी संभावना है। रोगियों की अस्पताल से छुट्टी के बाद आवश्यक देखभाल के मामले में भी इनका योगदान प्रभावी हो सकता है।

प्राथमिक स्तर पर असंचारी रोगों से बचाव के प्रयासों उनके प्रभावी प्रबंधन से रोगियों के अस्पतालों में भर्ती कराने के मामलो में काफी कमी आ सकती है। इसके साथ ही, अंतरंग रोगियों की देखभाल के लिये सुविधाओं हेतु आवश्यक प्रोत्साहनों की मांग जनित निवेश योजनाओं के साथ जोड़ दिया जाए तो प्राथमिक सेवा देने वाली सार्वजनिक इकाइयों में पारिश्रमिक के भुगतान की ऐसी प्रणाली शुरू की जा सकती है जो उसके कार्य-निष्पादन की गुणवत्ता पर आधारित हो। यदि इन कार्यक्रमों कों भावी विस्तार के लिए इसी प्रकार समन्वित किया जा सके तो स्वास्थ्य क्षेत्र में वित्तीय निवेश और सेवा-अदायगी प्रणाली को और बेहतर एवं सुदृढ़ रूप दिया जा सकता है। सार्वजनिक स्वास्थ्य पर और अधिक व्यय करने की प्रतिबद्धता और यूएचसी कार्यक्रमों की वर्तमान पीढ़ी को यदि एक साथ देखा जाए तो भविष्य के लिये यह अच्छी संभावना का संकेत है। सार्वजनिक स्वास्थ्य कवरेज की दिशा में भारत के आगे बढ़ने की संभावना को प्रबल दिखाई देती है। ❑

(लेखक विश्व बैंक में दक्षिण एशिया क्षेत्र के वरिष्ठ स्वास्थ्य विशेषज्ञ हैं।

ई मेल-snagpal@worldbank.org **)**

योजना

सदस्यता कूपन

नयी सदस्यता / नवीकरण/ पता बदलने के लिए (जो लागू होता हो उस पर '✓' का चिह्न लगाएं)

मैं .... (पत्रिका का नाम एवं भाषा) का ❑ वार्षिक(100 रुपये) ❑ द्विवार्षिक (180 रुपये) ❑ त्रिवार्षिक (250 रुपये) सदस्य बनने का इच्छुक हूं। डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर/मनीआर्डर संख्या .... तारीख ....

नाम ....

वर्ग ❑ विद्यार्थी ❑ शिक्षक ❑ संस्था ❑ अन्य

पता..

....

पिन ....

नवीकरण/पता बदलने के लिए कृपया अपनी सदस्य संख्या यहां लिखें ....

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर/मनीआर्डर अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग के नाम से बनवाएं और कूपन के साथ इस पते पर भेजें : व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार) प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड-IV सातवां तल, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

भारत में पेटेंट कराई गई दवाओं की ऊंची कीमतें क्या हम इस बारे में कुछ कर सकते हैं?

• सुदीप चौधरी

दवाओं के पेटेंट मंजूर करने के पक्ष में प्रमुख दलील यह दी जाती है कि इससे अनुसंधान और नवाचार पर अधिक निवेश को बढ़ावा मिलता है। बुनियादी तौर पर तर्क़ यह दिया जाता है कि दवाओं का विकास करना एक ख़र्चीला काम है। कहा जाता है कि बिना पेटेंट सुरक्षा के अन्य उत्पादक नये उत्पाद की नकल कर लेंगे और इस तरह से नवाचारी उत्पादक के अनुसंधान पर आयी लागत की भरपाई नहीं हो पाएगी

एक समय था जब भारत औषधि निर्माण क्षेत्र में दुनियाभर में अग्रणी देश माना जाता था। औषधि निर्माण में पेटेंट सुरक्षा 1972 में समाप्त कर दिये जाने के साथ भारत इस क्षेत्र में काम करने वाला एक अग्रणी देश बनकर उभरा और उसे कम लागत पर ऊंची गुणवत्ता वाली दवाएं बनाने वाले देश की मान्यता मिली। लेकिन 1 जनवरी, 2005 से भारत में दवा उत्पाद पेटेंट सुरक्षा फिर लागू कर दी गई। कारण कि, विश्व व्यापार संगठन की व्यापार में बौद्धिक संपदा अधिकार संबंधी हक़ों की रक्षा (ट्रिप्स) की प्रतिबद्धता। 1970 के दशक से पहले के बाकी भाग में पेटेंट की गई दवाएं फिर बहुत ऊंची क़ीमतों पर बिकने लगीं। उदाहरण के लिए कैंसर के इलाज में काम आने वाली दवा – सनोफी-अवेंटीस का 60 मिली लीटर का एक इंजेक्शन (जेनेरिक नाम कैबाजिटैक्सेल) की क़ीमत हो गई 3,30,000 रुपये। इसी तरह से रोस हर्सेप्टिन (ट्रस्टुजुमैब) बिकने लगी 1,10,000 रुपये में और मर्क कंपनी की एर्बिटैक्स (सितुक्सीमैब) की कीमत हो गई 92 हजार रुपये। 50 हज़ार रुपये से ज्यादा क़ीमत की एक खुराक़ वाली दवा का विवरण तालिका-1 में देखें।

दवाओं के पेटेंट मंजूर करने के पक्ष में प्रमुख दलील यह दी जाती है कि इससे अनुसंधान और नवाचार पर अधिक निवेश को बढ़ावा मिलता है। बुनियादी तौर पर तर्क़ यह दिया जाता है कि दवाओं का विकास करना एक ख़र्चीला काम है। कहा जाता है कि बिना पेटेंट सुरक्षा के अन्य उत्पादक नये उत्पाद की नकल कर लेंगे और इस तरह से नवाचारी उत्पादक के अनुसंधाान पर आयी लागत की भरपाई नहीं हो पाएगी। इसीलिए नवाचारी उत्पादक को किए गए अनुसंधाान और विकास पर अथवा सार्वजनिक रूप से इसके विवरण दे देने पर कोई प्रोत्साहन नहीं मिल पाएगा। पेटेंट सुरक्षा से नकल में देर लगती है और अनुसंधान एवं विकास के लिए प्रोत्साहन मिलता है। इस तरह से पेटेंट सुरक्षा से उम्मीद की जाती है कि उसका रचनात्मक प्रभाव पड़ेगा। लेकिन पेटेंट के अधिकार से अन्य लोगों को वैसी ही दवा बाज़ार में लाने पर प्रतिबंध लग जाता है। इससे प्रतिस्पर्धा नहीं रहती और दवा की क़ीमतें ऊंची होती है और पहुंच कम हो जाती है। यह इसका नकारात्मक प्रभाव है। पेटेंट व्यवस्था के असली प्रभाव हमेशा से ही समाज के लिए विवादास्पद रहे हैं। पेटेंट कानूनों के हिसाब से ट्रिप्स (पेटेंट संबंधी बौद्धिक संपदा की रक्षा का अधिकार) समझौता पेटेंट कराने वालों के अधिकारों के रक्षा के लिए है। ट्रिप्स की धारा 7 जो उद्देश्यों से संबंधित है और धारा 8 जो उद्देश्यों के बारे में है, स्पष्ट रूप से कहती है कि यह उत्पादकों और तकनीकी ज्ञान का इस्तेमाल करने वाले दोनों के लिए है। इस बात पर भी जोर दिया गया है कि अधिकारों और जिम्मेदारियों में संतुलन बनाए रखने के लिए सदस्य देशों को यह अधिकार मिल जाता है कि वे पेटेंट अधिकारों का उल्लंघन करने वालों तथा बौद्धिक संपदा को अधिकार न मानने वालों के ख़िलाफ़ कदम उठाएं।

ट्रिप्स में दो महत्वपूर्ण अपवादों की व्यवस्था है जिनके जरिये पेटेंट सुरक्षा के नकारात्मक परिणाम रोके जा सकते हैं। ये हैं (1) कुछ मामलों में पेटेंट की मंजूरी से मुक्ति और (2) अनिवार्य लाइसेंस व्यवस्था। भारत में इसके आगे एक और तीसरे नंबर पर पेटेंट नियम में अपवाद जोड़ दिया गया है यह अधिकार 2005 में तब किया गया जब औषधि निर्माण क्षेत्र में पेटेंट फिर शुरू किए गए। भारत के उच्चतम न्यायालय ने हाल ही में नोआरटिस का यह तर्क खारिज कर दिया है कि पेटेंट सुरक्षा उसकी कैंसररोधी दवा के लिए है जिसे गिलिबेक या गिलीबेक नाम से बेचा जाता है। नोआरटिस पेटेंट मामले की दुनियाभर में चर्चा हुई थी। हालांकि इसके लिए महत्वपूर्ण परिणाम हो सकते हैं, दलील दी जा सकती है कि अगर पेटेंटशुदा दवाओं की क़ीमतों पर काबू पाना है तो सही लाइसेंस व्यवस्था होना बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। भारत में अनिवार्य लाइसेंस लेने की व्यवस्था प्रभावी रूप से लागू नहीं की जा सकती।

पेटेंट सिर्फ़ सीमित अवधि के लिए प्रदान किया जाता है फिलहाल यह ट्रिप्स के अंतर्गत 20 वर्षों के लिए दिया जा रहा है इसी तरह मरीज के न रहने के बाद दूसरी फर्में अन्य बाज़ारों में प्रवेश कर सकती हैं/करती हैं जिसके

परिणामस्वरूप पेटेंटधारक कंपनी का लाभ प्रभावित होता है। यह सचमुच ही पेटेंट कानूनों की नीयत नहीं है। लेकिन बहुराष्ट्रीय कंपनियां जिनके पास ऐसी दवाओं का पेटेंट होता है, अक्सर अन्य पेटेंट पाने वालों का रास्ता रोक देती है अथवा उसमें विलंब पैदा करती हैं जिससे ज्यादा समय लग जाता है। कंपनियों में फाईजर, ग्लाक्सोस्मिथक्लाईन, रोश, नोआरटिस शामिल हैं। इससे विलंब हो जाता है इस व्यवहार को एवरग्रीनिंग कहते हैं। कुछ उत्पादों के लिए दूसरे नंबर के पेटेंट हो सकते हैं। उदाहरण के लिए नमक या अन्य बिक चुकी पेटेंट के आधार पर बनने वाली दवादएं। तकनीकी रूप से ये नई दवाएं होती हैं और इनमे नये रसायन डालना औषधि निर्माण के हिसाब से नवाचार हो सकता है लेकिन ऐसा बहुत कम होता है। इस प्रकार के मामलों में संबद्ध देशों की पेटेंट संबंधी कार्रवाई न्यायोचित कही जा सकती है क्योंकि पेटेंट व्यवस्था का दाम नई दवाओं को पेटेंट पाने के लिए प्रोत्साहित करना नहीं है बल्कि उसकी अवधि बढ़ा देना है। लेकिन नवाचार के नाम पर इन परिस्थितियों में भी कई देशों में पेटेंट मंजूर कर लिया जाता है। ऐसे देशों में अमरीका प्रमुख है जो विकासशील देशों के लिए इस मामले में आदर्श माना जाता है और ये देश स्वेच्छा से अथवा अनिक्षा से इसका पालन भी करते हैं।

पेटेंट कानून की धारा 3 'डी' पेटेंट व्यवस्था के ऐसे दुरुपयोग को नियमित भी करता है। धारा 3 (डी) के अंतर्गत किसी ऐसे पदार्थ की मात्र खोज कर लेना ही उस तत्व की प्रभावशीलता बढ़ाना नहीं माना जाएगा और उसको पेटेंट नहीं दिया जाएगा। नोआरटिस ने इमैटिनिब के लिए पेटेंट पाने के लिए आवेदन दिया। यह एक नुस्खे के आधार पर बनाया गया था। अमरीका में अप्रैल 1994 में यह आवेदन किया गया। विपणन अनुमोदन प्राप्त होने के बाद कंपनी ने इस दवाई को पुराने माईल्वाइड ल्यूकोमिया की दवा के रूप में बेचना शुरू किया लेकिन पाया गया कि यह तत्व इमेटिनिब नहीं बल्की इमेटिनिब नेसिलेट (ब्रांड नाम ग्लिबिच अथवा गलीबिच) नहीं बल्कि इसका कोई डिराएटिव था। कंपनी ने इसके लिए अलग से पेटेंट के लिए आवेदन नहीं दिया था क्योंकि उच्चतम न्यायालय ने फ़ैसले में कहा था कि नोआरटिस का पेटेंट सिर्फ इमेटिनिब के अंतर्गत नहीं बल्कि इमेटिनीवमेसिलेट के अंतर्गत आता है। नोआरटिस उस समय इमेटिनीव/मेसिलेट के लिए पेटेंट पाने का आवेदन नही दें सकें क्योंकि भारत में ऐसे पेटेंट आवेदन की ज़रूरत नहीं थीं अथवा ये पेटेंट अन्य किसी स्थान पर दिया जा सकता था। ट्रिप्स का आविर्भाव 1 जनवरी, 1995 को हुआ थाा जबकि नोआरटिस ने ऐसा आवेदन जुलाई 1998 में दिया था। यह आवेदन भी बीटा-क्रिस्टालीन के लिए था जो एक तरह का इमेटिनीबमेसिलेट है। इस पर उच्चतम न्यायालय ने फ़ैसला दिया कि बीटा-क्रिस्टालीन के रूप में दिया जाने वाला पेटेंट धारा 3 'डी' के मापदंड पूरे नहीं करता। उच्चतम न्यायालय ने नोआरटिस को यह पेटेंट प्रदान करने से इनकार कर दिया क्योंकि नोआरटिस यह साबित करने में विकल रही की बीटा-क्रिस्टालीन कोई नया पदार्थ है और यह दवा की प्रभावशीलता बढ़ाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

भारत में *एवरग्रीनिंग* चालू रखना बहुत मुश्किल है। इसके लिए तय किए गए मापदंड बड़े कठोर हैं और उन्हें चालू रखना आसान नहीं। भारत में पेटेंट ऑफिस औषधीय प्रभावशीलता के लिए पेटेंट प्रदान करता है। अगर ऐसा सिद्ध नहीं होता तो पेटेंट नहीं मंजूर किया जाएगा। लेकिन अगर यह साबित कर दिया गया कि नये प्रकार का औषधीय नुस्खा ज्यादा कारगर नहीं होगा तो पेटेंट नहीं दिया जाएगा इस तरह से गीलवेक जैसी दवाएं जो

तालिका 1

2013 में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के एकाधिकार वाली दवाओं की क़ीमतें

ब्रांडेड उत्पाद	**जेनेरिक नाम**	**बहुराष्ट्रीय कंपनी**	**औषधी विज्ञान समूह**	**प्रति यूनिट मूल्य**
जेवताना 60 एमजी इंजेक्शन	कैबेजिटैक्सेल	सनोफि अवेनटिस	कैंसररोधी	3,30,000
हरसेपटिन इंजेक्शन 50 एमएल	ट्रस्टुजुमैब	रोज़	कैंसररोधी	1,10,700
एर्बीटुक्स 500 एमजी इंजेक्शन 50 एमएल	सेटुक्सीमैब	मरक	कैंसररोधी	92,316
मैबथेरा 500 एमजी इंजेक्शन 50 एमएल	रीटुक्सीमैब	रोज़	कैंसररोधी	80,000
नेवोसेबन (एप्टाकोगल्फा) 2.4 एमजी इंजेक्शन 1	ऐंटीहेमोफिलीक ग्लोबीन बी प्रोथोंबिन एंड कम्पलेक्स	नोबो नोडिस्क	रक्त संबंधी	79,000
टोरीजेल 25 एमजी इंजेक्ज़न 1 एमएल	टेंम्सीरोलीमुस	फाईजर	कैंसररोधी	74,520
एलिम्टा 500 एमजी इंजेक्शन 1	पेमेट्रिक्स्ड	एली लीली	कैंसररोधी	73,660
सैंनडोसट्रेटिन 0.1 एमजी इंजेक्शन 1	आक्ट्रेटाइड	नेआरटिस	रक्तसंबंधी	72,081
इक्समेप्रा 45 एमजी इंजेक्शन 1	एक्सबेपिलोन	बीएमएस	कैंसररोधी	71,175
सैनडोस्टीनलार 20 एमजी इंजेक्शन 1 एमएल	आक्ट्रेटाइड	नोवारटिस	रक्तसंबंधी	65,499
वेलकेड 3.5 एमजी इंजेक्शन 1	बोरटेजोमिब	जॉनसन एंड जॉनसन	कैंसररोधी	60,940

स्रोत - एआईओसीडी : एडब्लूएसीएस के बिक्री लेखा परीक्षा आंकड़े

वैसे भी पेटेंट पा सकती थीं, एकाधिकार के चलते पेटेंट पाने योग्य नहीं मानी जाएगीं और इस तरह से इनकी गिनती ज्यादा किफायती होंगी। उच्चतम न्यायालय का यह फ़ैसला ट्रिप्स के अनुकूल है और अंतर्राष्ट्रीय रूप से कानूनी प्रक्रियाओं का पालन करने के बाद सुनाया गया है। इस प्रकार से अन्य देश भी, जहां पेटेंट कानून ज्यादा सख्त हैं, इसी प्रकार के प्रावधान करने के लिए आकर्षित होंगे और मरीजों के लिए दवाएं पाना ज्यादा किफायती हो जाएगा इस प्रकार से इस फ़ैसले का अंतर्राष्ट्रीय महत्व हो गया है।

लेकिन पेटेंट के अधीन चल रही वर्तमान दवाएं एकाधिकार वर्ग में तब तक गिनी जाती रहेंगी जबतक उनका पेटेंट खत्म नहीं हो जाता। उदाहरण के लिए तालिकाः 1 वाली दवाएं अथवा औषधियां। वे औषधिया जिनका इस कानून के अंतर्गत पेटेंट लिया जाएगा। यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि अप्रैल 1994 में जब नोआरटिस ने पेटेंट के लिए आवेदन दिया था उसके कुछ ही समय बाद 1 जनवरी, 1995 को उसने अमरीका में ऐसा ही आवेदन दिया था उसने कहा था कि कैंसररोधी यह दवा भारत में पेटेंट के काबिल पाई गई है और इस पर धारा 3 'डी' तब तक लागू नहीं की जाएगी जब तक मरीज जिंदा है। इस प्रकार से धारा 3 'डी' इस समस्या के एक भाग पर ही लागू होती है। अगर दवा की क़ीमतें बहुत ज्यादा हैं, तो इसमें देश क्या कर सकता है? यह ऐसे मौके हैं जब अनिवार्य लाइसेंस पाना महत्वपूर्ण हो जाता है।

अनिवार्य लाइसेंस व्यवस्था में सरकार गैर-पेटेंटधारकों को पेटेंट का इस्तेमाल करने का अधिकार देती है। उदाहरण के लिए गैर-पेटेंटधारक पेटेंट वाली दवाएं बनाएं और बेच सकते हैं और इसके लिए मूल पेटेंटधारकों से अनुमति लेने या उन्हें रयॉल्टी देने की ज़रूरत नहीं है। जैसा कि विभिन्न रिर्पोटों में कहा गया है अगर कोई उत्पाद पेटेंटजुदा भी है तों अनिवार्य लाइसेंसिंग व्यवस्था बनाने पर मूल पर नकारात्मक परिणाम नहीं दिखाई देगें। अगर कोई भारतीय कंपनियां पेटेंट वाली दवाओं का लाइसेंस प्राप्त कर लेती हैं, तो इससे दवाएं बनाने वालों के बीच जो प्रतियोगिता पैदा होगी अथवा उनके द्वारा रयॉल्टी दी जाएगी उसका असर मूल पर दिखाई देगा ओर उसके जरिये अनुसंधान के लिए प्रोत्साहन राशि जमा होगी।

संशोधित अधिनियम में अनिवार्य लाइसेंसिंग के बारे में अनेक प्रावधान किए गए हैं। समान्य सिद्धांत यह रखा गया है कि पेटेंटशुदा दवाएं किफायती मूल्य पर उपलब्ध रहें और जो लोग भारत में काम कर रहें है वे इन्हें प्राप्त कर सकें। वास्तविकता यह है कि अगर कोई अनिवार्य लाइसेंसिंग व्यवस्था में आवेदन देता है और उसका आधार बताता है कि उसे जनता की आम ज़रूरतें पूरी करनी है तो यह काफी नहीं होगा। उसे इस आधार पर आवेदन करना होगा कि भारत में यह दवा किफायती और वाजिब दाम उपलब्ध नहीं है अथवा भारत भूमि पर पेटेंट वाली खोज सफल नहीं हुई है। क्या इस संबंध में कोई शंका हो सकती है कि 50 हजार रुपये प्रति खुराक़ वाली दवाएं वाजिब मूल्य वाली नहीं है? भारत में जब से पेटेंट कानून लागू हुआ है तब से आज तक नैटको नाम की एक भारतीय जेनेरिक कंपनी कैंसररोधी दवाई सोराफेनिब टोंसिलेट बेच रही है जबकि बायर कम्पनी नेक्सावर नाम से बेचती है और उसे इसका पेटेंट मिला हुआ है।

जहां अनिवार्य लाइसेंस व्यवस्था सफल रूप से लागू है, उदाहरण के लिए कनाडा, वहां का अनुभव बताता है कि इस मामले में सीधे-सीधे और पारदर्शी और तेज़ गति वाली प्रक्रियाएं महत्वपूर्ण होती हैं। किसी भी अनिवार्य लाइसेंस व्यवस्था वाले देश में कोई पेटेंटधारक इसका समर्थन नहीं करेगा। कनाडा के अनुभव से जाहिर होता है कि प्रक्रियाएं और चलन कैसे इस प्रकार की हो सकती हैं कि पेटेंटधारक अनिवार्य लाइसेंस मंजूर करने की प्रक्रिया में आड़े आ सकते हैं। लेकिन भारत में ऐसा नहीं हुआ। सारी प्रक्रिया जरूरत से ज्यादा कानूनी बना दी गई है। यह प्रक्रिया खुली हुई है और अनिवार्य लाइसेंस मंजूर करने की कोई समय सीमा निर्धारित नहीं है। इस प्रक्रिया में पेटेंटधारक मुकदमा दायर कर के ज्यादा समय प्राप्त कर सकते हैं। मुकदमे बहुत ख़र्चीले होते हैं और पेटेंटधारक बहुराष्ट्रीय निगम के मुक़ाबले अन्य लोगों का मुकदमा लड़ना मुश्किल हो जाता है। ये संभावनाएं सिर्फ़ कागजी नहीं हैं। 1970 के दशक से पहले भारत में यही हो रहा था और 2005 के बाद भी ऐसा हो रहा है। अनिवार्य लाइसेंस प्राप्त करने कि मौजूदा प्रक्रिया लगभग वैसी ही है जैसी भारत में 70 के दशक से पहले हुआ करती थीं। तब भारत में दवा क्षेत्र में पेटेंट नहीं माना जाता था। उस समय सिर्फ़ दो प्रकार के अनिवार्य लाइसेंस दिये जाते थे। इसका कारण था मुश्किल प्रक्रिया। यह वही प्रक्रिया है जो 1970 के अधिनियम में उत्पादों के लिए आई अब संशोधित रूप में सभी औषधियों के निर्माण के लिए लागू कर दी गई है। ट्रिप्स के जरिये सदस्य देशों को अपनी खुद की व्यवस्था विकसित करने के काफी अवसर दिये जाते हैं। उदाहरण के लिए ट्रिप्स में व्यवस्था है कि जिन लोगों को पेटेंट नहीं मिला है वे पहले स्वैच्छिक लाइसेंस पाने कि कोशिश करेंगे। लेकिन इस संबंध में जो मार्गदर्शक नियम जारी किये जाएंगे वे तार्किक आधार पर होंगे। इसके लिए अधिकतम समय-सीमा तय की जा सकती है। इस मामले में प्रक्रिया बिल्कुल सीधी-सादी हो सकती है। वह यह कि आवेदक को स्वैच्छिक लाइसेंस नहीं मिला तो उसे अनिवार्य लाइसेंस दे दिया जाएगा।

एक और रियायत जो भारत को मिली हुई है वह है पेटेंट की हुई दवाओं की क़ीमतों पर सीधा नियंत्रण ट्रिप्स अथवा विश्व व्यापार संगठन के अन्य समझौतों के अंतर्गत मूल नियंत्रण का कोई निषेध नहीं है लेकिन जो खास दो अंतर हैं वे मूलनियंत्रण के उपायों और अनिवार्य लाइसेंस व्यवस्था में हैं। इन पर ध्यान दिया जाना चाहिए। अगर क़ीमतों पर नियंत्रण किया जाता हैं तो जो बहुराष्ट्रीय कंपनी पेटेंटधारक हैं, वह इन्हें भारत में नहीं बेच सकती। अगर वे ऐसा करते हैं तो दवाएं किफायती हो जाएंगी लेकिन इसका मतलब जेनेरिक कंपनियां यह नहीं मानतीं। अनिवार्य लाइसेंसिंग व्यवस्था के कारण कीमतें न सिर्फ़ प्रतियोगिता के चलते किफायती हो जाती हैं, बल्कि कुछ जेनेरिक कम्पनियों के लिए वह सुनिश्चित करती हैं जो दीर्घ अवधि में उनके लिए अनुकूल पड़ता है। ❑

(लेखक कोलकाता के इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर हैं। ईमेल : sudip@iimal.ac.in **)**

IAS

भारत का एकमात्र सेवार्थ संस्थान
जो "न्यूनतम शुल्क पर अधिकतम गुणवत्ता" हेतु प्रतिबद्ध है

PCS

KUMAR'S IAS

KUMAR'S IAS में Fee अन्य संस्थानों की तुलना मे कम क्यों?

क्योंकि

KUMAR'S IAS की स्थापना Kumar Sir द्वारा 2006 में अपनी Mother की प्रेरणा से की गई थी, और उन्हीं के कहने पर Kumar Sir ने संस्थान को केवल आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग को ध्यान में रखकर संचालित किया लेकिन कुछ समय पूर्व उनकी Death हो जाने के कारण आज भी Kumar Sir उनके सपने को पूरा करने के लिए संस्थान को सेवार्थ भावना पर ही संचालित कर रहे है। इसलिए कोई भी अभ्यर्थी KUMAR'S IAS में आकर कम Fee के बारे में कोई प्रश्न न करें और ना ही अन्य संस्थान KUMAR'S IAS की सेवार्थ भावना पर कोई टिप्पणी करें।

उपलब्ध विषय, Fee व कोर्स अवधि

विषय	Fee	अवधि
सामान्य अध्ययन (मुख्य परीक्षा)	₹ 15,500	5 माह
सामान्य अध्ययन (प्रारंभिक सह मुख्य परीक्षा)	₹ 20,500	8 माह
लोक प्रशासन (मुख्य परीक्षा)	₹ 15,500	4 माह
CSAT	₹ 12,500	3½ माह
BPL, SC, ST, OBC तथा Female को इस Fee में 25% Discount मिलेगा।		

अभ्यर्थी ध्यान दें Admission "पहले आऐं व पहले पाऐं" के आधार पर होगें अतः बैच में Seat Full हो जाने के बाद किसी भी प्रकार की सिफारिश को स्वीकार नहीं किया जाएगा।

बैच प्रारम्भ : 16 Jan.

एक बार पुनः कम Fee में उच्चतम गुणवत्ता का उत्कृष्ट परिणाम

Rank-4 (BPSC) Md. Mustaque

Rank- 97

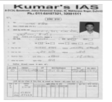

Result CSE-2012

Jafar Malik Roll No.: 038816

Sakthi Ganesan S Roll No.: 020243

Rank- 131

Prabhat Kumar Rank - 461 | Ashok Kr. Suthar Rank - 505 | Rituraj Raghuvanshi Rank - 555 | Md. Mustaque Rank - 722 | Dhanlaxmi Chourasia Rank - 747 | Krishan Kumar Rank - 788 | Monika Pawar Rank - 798 | Cheshta Yadav Rank - 812 | Sanjiv Kumar Rank - 863 | N.A. Narendra Kumar Rank - 865

KUMAR'S IAS

DELHI HEAD OFFICE

A-31/34, Basement, Jaina Exten. Comp., Dr. Mukherjee Nagar, Delhi
0-888-222-4455
0-888-222-4466
0-888-222-4477
0-888-222-4488
011-47567779

AGRA BRANCH OFFICE

7, II[nd] Floor, Jawahar Nagar, Bye Pass Road, Khandari, Agra
0-8393900022
0-8393900033
0-8393900044
0-8393900055
0562-6888886

CENTRAL ENQUIRY : 0-8882388888

Email : kumariasacademy@gmail.com
Facebook : kumarias343@gmail.com
Website : www.kumarsias.com

CENTRAL ENQUIRY : 0-8882388888

अभ्यर्थी ध्यान दें Admission कराने के लिए 1 Photo व Total Fee का 20% Amount अवश्य साथ लायें...
अभ्यर्थी ध्यान दें Admission कराने के लिए 1 Photo व Total Fee का 20% Amount अवश्य साथ लायें...

YH-255/2014

भारत में सबके लिए स्वास्थ्य सुविधाएं संसाधन उपयोग एवं नीति मानदंड

• अजय महल

बड़ी संख्या में भारत के लोगों के लिए चिकित्सा सेवाओं का विस्तार वांछनीय नीतिगत लक्ष्य है ताकि स्वास्थ्य में सुधार की संभावनाएं बढ़ाई जा सकें और करोड़ों भारतीयों द्वारा उठाई जा रही वित्तीय कठिनाइयों को कम किया जा सके। परंतु, सार्वजनिक क्षेत्र के संसाधनों के संदर्भ में यह लक्ष्य हासिल करने के लिए अधिक धन की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त बड़ी संख्या में सार्वजनिक बीमा योजनाओं का प्रभावी कार्यान्वयन जरूरी है

पिछले दशक में भारत में केंद्र और राज्य स्तर पर सरकारों ने स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं की सेवा गुणवत्ता और वित्तीय सक्षमता में सुधाार के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। प्रमुख उपायों में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एनआरएचएम), जो 2005 में शुरू किया गया था और जिसका उद्‌देश्य प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर सेवा गुणवत्ता में सुधार लाना था, तथा राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना (आरएसबीवाई) शामिल है, जो निर्धनों के लिए 2007 में शुरू की गई बीमा योजना है इसमें सरकारी खर्च पर अस्पताल में उपचार (माध्यमिक स्तर) की सुविधा प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु जैसे कुछ राज्यों ने स्वयं की सरकारी वित्तपोषित बीमा योजनाएं शुरू की हैं। ये कार्यक्रम भारत में स्वास्थ्य सेवाओं के प्रावधान के लिए पहले से विद्यमान लेकिन अपेक्षाकृत कम गुणवत्ता वाले सरकारी स्वास्थ्य ढांचे को मजबूत बनाने और उसमें पूरक सुविधाएं जुटाने का काम करते हैं। योजना आयोग द्वारा हाल में गठित उच्च स्तरीय विशेषज्ञ समूह (एचएलईजी) की ताज़ा रिपोर्ट के अनुसार ये कार्यक्रम 'सबके लिए वहन करने योग्य स्वास्थ्य देखभाल सुविधाएं' प्रदान करने के महत्वाकांक्षी लक्ष्य तथा 1946 की भोरे समिति की रिपोर्ट में सुझाए गए लक्ष्यों और भारतीय संविधान के निर्देशक सिद्धांतों के अनुरूप है।

समूची आबादी के लिए स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं के विस्तार के भारत के प्रयासों का अनुकरण इस क्षेत्र में एशिया और लैटिन अमरीका में भी किया गया। 2001 में थाईलैंड सरकार ने एक स्वास्थ्य बीमा योजना शुरू की जिसमें संगठित (या औपचारिक) क्षेत्र में समूहों के अतिरिक्त कृषि और अनौपचारिक क्षेत्रों से संबद्ध असंख्य लोगों के लिए अनिवार्य नि:शुल्क स्वास्थ्य सुविधाओं का प्रावधान है। परिणाम स्वरूप देश की समूची आबादी स्वास्थ्य बीमा के दायरे में आ गई। इसमें चीन का उदाहरण भी उल्लेखनीय है। करीब दो दशक पहले तत्कालीन चीनी सरकार द्वारा शुरू किए गए बाज़ार-समर्थक सुधारों के बाद स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए चीनी सरकार ने धन की व्यवस्था में कमी की, जिससे परिवारों की उपचार संबंधी वित्तीय कठिनाइयों में तेजी से बढ़ोतरी हुई। इस स्थिति से निपटने के लिए चीन ने दो बीमा निधियां शुरू कीं। पहली शहरी क्षेत्र के लोगों के लिए थी और दूसरी ग्रामीण क्षेत्रों के लिए। ग्रामीण क्षेत्रों से संबद्ध निधि को नई सहकारी चिकित्सा योजना का नाम दिया गया। हाल के अनुमानों के अनुसार ये दोनों योजनाएं चीन की लगभग समूची आबादी को स्वास्थ्य देखभाल प्रदान करती हैं। 2001 में मैक्सिको में भी स्वास्थ्य क्षेत्र में प्रमुख सुधार शुरू किए गए थे। सेगुरो पापुलर स्वास्थ्य बीमा कार्यक्रम के अंतर्गत अभी तक बीमा रहित करीब 3 करोड़ व्यक्तियों को स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं के विस्तारित दायरे में शामिल किया गया।

ये अंतर्राष्ट्रीय उदाहरण और भारत में उनसे संबंधित गतिविधियां स्वास्थ्य देखभाल की लागत और वित्त व्यवस्था के बारे में तीन प्रमुख चिंताओं को व्यक्त करती हैं। प्रथम, स्वास्थ्य देखभाल की समग्र लागत में समय के साथ साथ बढ़ोतरी की प्रवृत्ति है। भारत जैसे विकासशील देशों में लागत में वृद्धि का संबंध सिर्फ़ मांग में बढ़ोतरी और आबादी में वृद्धि द्वारा लाई गई आय और चिरकालिक बीमारियों की बढ़ती संख्या, जिनका उपचार महंगा पड़ता है, के साथ नहीं है। वास्तव में वयोवृद्ध आबादी की बढ़ती हिस्सेदारी स्वास्थ्य देखभाल लागत वृद्धि में अपेक्षाकृत कम भूमिका अदा करती है। लागत बढ़ने का प्रमुख कारण स्वास्थ्य क्षेत्र में प्रौद्योगिकी संबंधी तीव्र आधुनिकीकरण है। इसमें विकसित देशों से महंगे नैदानिक और उपचार संबंधी आयात शामिल हैं। दूसरे, बीमा सुविधा के अभाव या सार्वजनिक सुविधाओं में सब्सिडीयुक्त देखभाल की कमी के कारण इस बढ़ती लागत का बोझ मुख्य रूप से परिवारों के वित्तीय साधनों पर पड़ता है। भारत में परिवार के आकार में कमी आने से माता-पिता कम बच्चे रखते हैं, जिससे वृद्धावस्था में स्वास्थ्य देखभाल के लिए वित्तीय सहायता के साधनों के रूप में वयस्क बच्चों की भूमिका बढ़ जाती है जिसका असर न केवल परिवार

के सद्भाव पर पड़ता है बल्कि स्वयं बच्चों की आर्थिक और सामाजिक खुशहाली भी प्रभावित होती है। तीसरे, संसाधन बरबादी और समानता संबंधी मुद्दे भी शामिल हैं। जेब से खर्च अदा करने की परिणति धन की बरबादी के रूप में हो सकती है क्योंकि बीमाकर्ता व्यक्तियों की तुलना में स्वास्थ्य देखभाल प्रदाताओं से कम फीस वसूल कर सकते हैं। जेब से खर्च करने पर बढ़ती निर्भरता का अर्थ है कि उचित गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य देखभाल तक केवल उन्हीं लोगों की पहुंच होगी जो लागत वहन कर सकते हैं। ऐसे में उपचार के लिए कम समृद्ध परिवार और यहां तक कि मध्य वर्ग के सदस्यों को भी अपनी उत्पादक परिसंपत्तियां (जैसे मवेशी या भूमि) बेचनी पड़ सकती हैं अथवा ऋण लेना पड़ सकता है जिसकी परिणति परिवार की भावी हानियों के रूप में हो सकती है और उसकी ग़रीबी बढ़ सकती है।

सब के लिए स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान करने की कार्यनीति तैयार करना और उसे लागू करना नीति निर्माताओं और कार्यान्वयन एजेंसियों के लिए महत्वपूर्ण चुनौती है। इस आलेख का उद्देश्य ऐसी चार प्रमुख चुनौतियों का वर्णन करना है और उनसे संबद्ध नीति विकल्पों का सुझाव देना है :

- सबके लिए स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान करने पर कितनी लागत आएगी?
- इससे कितनी सुविधााएं प्रदान की जा सकेंगी?
- ये सुविधााएं किन लोगों को प्रदान की जाएंगी?
- ये सेवाएं कौन प्रदान करेगा?

लागत

इसमें कोई संदेह नहीं कि विस्तारित सुविधाओं पर अतीत की तुलना में बहुत अधिक सरकारी संसाधन आवंटित करने होंगे। एचएलईजी रिपोर्ट में भारत में सब के लिए सुविधाओं पर 'उत्तरोतर विस्तार' की वित्तीय लागत का अनुमान सकल घरेलू उत्पाद के हिस्से के रूप में लगाया गया है और कहा गया है कि 2022 तक सरकारी खर्च बढ़ा कर जीडीपी का 3 प्रतिशत करना होगा, जो फिलहाल जीडीपी का 1.1 प्रतिशत है। किंतु, राजकोषीय बोझ के बारे में अन्य अनुमान काफी ऊंचे हैं, जिनमें लागत को सकल घरेलू उत्पाद के चार प्रतिशत या उससे भी अधिक होने की बात कही गई है। मैक्सिको और थाईलैंड में स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं की कवरेज के विस्तार के बाद वहां खर्च में हुई बढ़ोतरी के अनुभवों को देखते हुए ये अनुमान आश्चर्यजनक नहीं लगते। इंडोनेशिया से प्राप्त ताजा रिपोर्टों से भी इस बात की पुष्टि होती है कि बढ़ती मांगों का बोझ बजट पर पड़ेगा और स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं पर सरकारी प्रावधाान राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा कार्यक्रम के अंतर्गत स्वास्थ्य देखभाल लाभ प्रदान करने के लिए अपेक्षित व्यय से कम पड़ेगा।

भारत में केंद्र और राज्यों के बजटों के वर्तमान स्तर को देखते हुए स्वास्थ्य ख़र्च को जीडीपी के 1.1 प्रतिशत से बढ़ा कर 3 से 4 प्रतिशत पर ले जाना बहुत अधिक लगता है। किंतु, यह भी संभव है कि सुविधाओं के कार्यान्वयन के बाद जब भारतीय आबादी को लाभ के दायरे की बेहतर जानकारी होगी, तो स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं के लिए यह बढ़ी हुई मांग भी पर्याप्त सिद्ध न हो। आंध्र प्रदेश में 2007 में शुरू की गई आरोग्य श्री स्वास्थ्य बीमा कार्यक्रम के अनुभव स्पष्ट रूप से इसी तरफ इशारा करते हैं। इसी वजह से कार्यक्रम निर्माताओं को इस बात पर ध्यानपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है कि कौन से लाभ (और कब उचित हैं) प्रदान किए जाएं, और सरकारी वित्त पोषित बीमा के अंतर्गत दी जाने वाली सब्सिडी से लाभ पर कुछ प्रतिबंध किन समूहों पर लगाए जाएं।

इसके अंतर्गत कौन से लाभ दिए जाएंगे

क्या बीमा लाभ सभी प्रकार की बीमारियों की लागत के लिए दिए जाने चाहिए? स्पष्ट है कि संसाधनों की सीमाएं ऐसा करने की अनुमति नहीं देंगी। परंतु, बजट संबंधी दबावों के अलावा, शत-प्रतिशत कवरेज के विरोध में कुछ और भी आधार हैं। असंख्य छोटे गांवों को प्रोसेस करने पर प्रशासनिक लागत बहुत अधिक हो सकती है। इस बात का भी जोखिम है कि सब्सिडी युक्त स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं के अत्यधिक इस्तेमाल के कारण सभी सेवाओं के लिए पूर्ण वित्त व्यवस्था की परिणति बरबादी के रूप में सामने आए। लोग हल्के-फुल्के सरदर्द और पीड़ाओं, खांसी जुखाम और ऐसी ही छोटी-मोटी बीमारियों के लिए स्वास्थ्य देखभाल की मांग कर सकते हैं। साथ ही हम यह चाहते हैं कि लोग निवारक देखभाल (जैसे रोग प्रतिरक्षण टीकाकरण, नियमित चिकित्सा जांच, प्रसवपूर्व और प्रसव परवर्ती देखभाल) सुविधाओं का इस्तेमाल करें ताकि परवर्ती जटिलताओं और अस्पताल उपचार का जोखिम कम किया जा सके। साथ ही यह भी वांछनीय है कि परिवारों को कैंसर और हृदय रोग जैसी असामान्य स्वास्थ्य स्थितियों पर खर्च के जोखिम के प्रति संरक्षा प्रदान की जाए, जिनके उपचार पर अत्यधिक लागत आती है। कवर की जाने वाली सेवाओं के चयन (अथवा 'लाभ पैकेज') के बारे में मैक्सिको ने एक उदाहरण पेश किया है। मैक्सिको के नीति-निर्माताओं ने स्वास्थ्य देखभाल अवसरों को विशेष रूप से निम्नांकित में विभाजित किया है (क) निवारक प्रयोजनों के लिए (अर्थात् टीकाकरण, स्वास्थ्य प्रोत्साहन शिक्षा) (ख) अपेक्षाकृत कठिन स्थितियों में देखभाल जिनका उपचार महंगा (जैसे कैंसर) पड़ता है और (ग) सामान्य स्थितियों का उपचार (जैसे बुखार, चोट लगना, अस्थमा आदि)। मैक्सिको में अपनाए गए दृष्टिकोण में उन स्वास्थ्य देखभाल अवसरों और अस्पताल उपचारों को शामिल किया गया है जो प्रति रुपया (मैक्सिको के मामले में पेसो) औसत खर्च पर सर्वाधिक लाभ प्रदान करते हैं। यह देखते हुए कि भारत की तुलना में वह बहुत अधिक अमीर है, मैक्सिको अत्यंत उदार लाभ प्रदान करने में सक्षम रहा है। कॉस्मेटिक सर्जरी, ट्रांसप्लांट्स और रीनल डायलेसिस को छोड़ दिया गया है, लेकिन इन्हें भी जल्द ही कवर किए जाने की संभावना है। ऐसी ही कार्यनीति थाईलैंड में अपनाई गई है।

यह विवाद का विषय है कि क्या भारत मैक्सिको (या थाईलैंड) के समान उदार सार्वजनिक सब्सिडीयुक्त सेवाएं प्रदान करने के लिए राजकोषीय स्थिति में है? राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना कार्यक्रम के अंतर्गत पांच व्यक्तियों के परिवार के लिए 30,000 रुपये के सीमित वार्षिक लाभ का प्रावधान इसी बात को दर्शाता है। लाभ पैकेज़ तैयार करने में मैक्सिको से सबक लेना अत्यंत महत्वपूर्ण है और कार्य क्षमताएं तभी हासिल किए जाने की संभावना है जब कवर की जाने वाली सेवाओं का चयन इस तरह से किया जाए कि ख़र्च संसाधनों के लिए अधि कतम लाभ प्राप्त किया जा सके और साथ ही लोगों को अस्पताल में उपचार से संबद्ध

भारी खर्च के खिलाफ संरक्षा प्रदान करने में संतुलन कायम करने की भी आवश्यकता है।

ये सुविधाएं किन लोगों को प्रदान की जाएंगी?

जब संसाधन सीमित हों तो कवर किए जाने वाले लाभार्थियों के बारे में नीति तय करना एक कार्यनीति है। वैकल्पिक रूप में यह भी विचारणीय है कि क्या सरकार संसाधनों के संरक्षण के लिए कुछ समूहों का चयन अधिक सब्सिडी देने के लिए कर सकती है। सबके लिए सुविधाएं प्रदान करने का यह अर्थ नहीं है कि सब के लिए नि:शुल्क सुविधाएं प्रदान की जाएं। उदाहरण के लिए यह हो सकता है कि स्वास्थ्य बीमा कार्यक्रम में आबादी के कुछ समूहों से अंशदान अपेक्षित हो और अन्य से नहीं। ऊपर वर्णित राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना कार्यक्रम लाभों के पैकेज को परिसीमित करता है, लेकिन किसी प्रीमियम के भुगतान को शामिल नहीं करता, जिनका भुगतान सीधे सरकार बीमा कंपनी को करती है। परंतु, आप एक ऐसे परिदृश्य की कल्पना कर सकते हैं, जिसमें बेहतर आय वाले परिवार स्वास्थ्य बीमा लाभ प्राप्त करने के लिए प्रीमियम के रूप में अधिक भुगतान करें, जो सेवाओं की पूरी लागत सीधे जेब से खर्च करने से बेहतर हो सकता है। अनेक देश, जिन्होंने सब के लिए स्वास्थ्य सुविधाएं देने का लक्ष्य हासिल कर लिया है, भुगतान के प्रयोजनों के लिए आबादी के साथ विभेदक पद्धति पर निर्भर हैं। कोरिया गणराज्य में आय इस बात को निर्धारित करती है कि किसी परिवार को सरकार से कोई सब्सिडी मिले या नहीं। जब स्वास्थ्य देखभाल के लिए खर्च की व्यवस्था करों के आधार पर की जाती है, जैसा कि भारत में सरकारी क्षेत्र की स्वास्थ्य सेवाओं के लिए होता है, तो स्पष्ट है कि कर राजस्व में अधिक योगदान करने वाले समृद्ध लोग होते हैं। भारत में कर्मचारी राज्य बीमा योजना (ईएसआईएस) में अंशदान भी आय के आधार पर अलग-अलग अदा करना होता है।

कोरिया गणराज्य और कुछ अन्य विकसित देश आय के आधार पर प्रीमियम भुगतान को बेहतर बना सकते हैं क्योंकि वहां परिवारों की आय का स्तर बेहतर है। भारत में कम समृद्ध लोगों की सार्थक पहचान एक कठिन कार्य है क्योंकि बड़ी संख्या में लोग असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं, जहां आय न तो नियमित है और न ही भली-भांति दर्ज की जाती है। प्रीमियम का निर्धारण चूंकि परिवार की आय के आधार पर किया जाता है, इसलिए उसका भुगतान लागू करना तब तक कठिन है, जब तक कि कुछ उचित और सरल मानदंड तय न कर दिए जाते जैसे-कार या स्कूटर का मालिक होना आदि। थाईलैंड और इंडोनेशिया ने यह निर्णय करके इस समस्या से छुटकारा पा लिया है कि अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वालों से कोई प्रीमियम नहीं लिया जायेगा, ठीक उसी तरह जैसे भारत में आरएसबीवाई के अंतर्गत गरीबों से कोई प्रीमियम नहीं लिया जाता है। परंतु, यदि आर्थिक स्थिति के अनुसार प्रीमियम नहीं लिया जाता है तो उसकी परिणति कम उदार लाभ पैकेज के रूप में सामने आती है।

स्वास्थ्य देखभाल सेवाएं कौन प्रदान करेगा ?

धन की व्यवस्था करना एकमात्र मुद्दा नहीं है। भारत में स्वास्थ्य बीमा लाभ का विस्तार करने की आवश्यकता से यह मांग भी उठेगी कि आखिर कौन कम लागत पर स्वास्थ्य देखभाल सेवाएं प्रदान कर सकता है। इससे आपूर्ति पक्ष के मुद्दों की ओर ध्यान देना होगा, जिनमें तीन मुद्दे विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं।

प्रथम, स्वास्थ्य क्षेत्र में बढ़ते सरकारी वित्तीय अंशदान के संदर्भ में सरकारी और निजी क्षेत्र की सही भूमिका का मूल्यांकन करने की आवश्यकता है। वर्तमान में भारत की आबादी निजी स्वास्थ्य देखभाल पर अधिक निर्भर करती है, जिसे उपभोक्ता जरूरतों की दृष्टि से सरकारी क्षेत्र की तुलना में अधिक जिम्मेदार समझा जा रहा है। भारत में निजी स्वास्थ्य देखभाल के प्रावधान के आकार और पहुंच को देखते हुए करीब 75 प्रतिशत बहिरंग रोगी और 50 प्रतिशत से अधिक अस्पताल उपचार के मामले में निजी क्षेत्र पर निर्भर करते हैं। ऐसे में निजी क्षेत्र की व्यापक भागीदारी के बिना कवरेज विस्तार का कोई भी कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता। धन जुटाने के लिए सार्वजनिक-निजी सेवा प्रदाताओं के बीच बढ़ती प्रतिस्पर्धा को देखते हुए भी निजी क्षेत्र की भागीदारी वांछनीय है, ताकि नियामक दिशा-निर्देशों के अनुसार दोनों को जिम्मेदार बनाया जा सके। सेवा गुणवत्ता और रोगी संतुष्ट कार्यों के लिए निरंतर धन प्रदान करके रोगियों के प्रति जवाबदेही में भी सुधार लाया जा सकता है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना और कुछ राज्य स्तरीय स्वास्थ्य बीमा कार्यक्रम अस्पताल देखभाल के मामले में पहले से ऐसा कर रहे हैं, जहां धन आवंटन इस बात पर निर्भर करता है कि रोगी कहां पर देखभाल की मांग करता है, सार्वजनिक क्षेत्र में या निजी क्षेत्र में।

इस संदर्भ में यह प्रश्न विचारणीय है कि सेवा परिणामों में सुधार के लिए सरकारी-निजी प्रतिस्पर्धा का संचालन किस प्रकार किया जाए? भारत में सरकार द्वारा संचालित स्वास्थ्य सुविधाओं की आमतौर पर यह कह कर आलोचना की जाती है कि उनमें रोगी की जरूरतों के प्रति उत्तरदायित्व का अभाव है। निजी क्षेत्र की सुविधाओं से भिन्न सरकारी क्षेत्र में प्रशासनिक और वित्तीय व्यवस्थाओं के कारण अड़चनों का सामना करना पड़ता है। इसके विपरीत निजी क्षेत्र में आधुनिक सुविधाओं पर खर्च के लिए धन की व्यवस्था आसानी से हो जाती है और यहां तक कि वे अपने कार्मिकों को प्रोत्साहन अदा करके प्रेरित भी करते हैं। भारत में सार्वजनिक क्षेत्र की स्वास्थ्य देखभाल सेवाएं अत्यधिक केंद्रीयकृत रूप में संचालित हैं, इसका यह अर्थ है कि सार्वजनिक क्षेत्र के कार्मिक राज्यों की राजधानियों में स्थानीय लोगों की बजाय अपने वरिष्ठ अधिकारियों के प्रति अधिक जवाबदेह हैं। अपेक्षाकृत कड़े वेतन ढांचों और सुविधा संबंधी अतिरिक्त प्रशासनिक लचीलेपन के अभाव में स्वास्थ्य बीमा से एकत्र की गई बजट से इतर राशि का इस्तेमाल आवश्यक प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए अथवा महत्वपूर्ण ढांचागत सुधारों के लिए नहीं हो पाता है। नतीजतन ऐसे रोगियों को आकर्षित करने के लिए कोई प्रतिस्पर्धा नहीं की जाती जो निजी क्षेत्र की सुविधाओं के लिए भुगतान करने में सक्षम होते हैं। सरकारी-निजी प्रतिस्पर्धा को सार्थक बनाने के लिए सुधारों के अंतर्गत सरकारी सुविधाओं पर अधिक स्थानीय निगरानी की व्यवस्था करनी होगी और उन्हें बजट से इतर वित्त व्यवस्थाओं और कार्मिक प्रबंधन के संदर्भ में अधिक स्वायत्तता देनी होगी। ऐसे ही सुधार 1990 के दशक के प्रारंभ में ब्रिटिश नेशनल हैल्थ सर्विस में शुरू किए गए थे, जिनके अंतर्गत अनेक सरकारी अस्पतालों को स्टाफ भर्ती करने और सेवाएं प्रदान करने में

कुछ स्वायत्ता दी गई थी और उन्हें वित्तीय अधिशेष रखने में सक्षम बनाया गया था।

दूसरे, प्राथमिक देखभाल और अस्पताल उपचार सुविधाओं के संचालन में सुधार की आवश्यकता है। वर्तमान में प्राथमिक स्तर की स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं को पूरी तरह दर-किनार करते हुए लोग सीधे अस्पतालों में और विशेषज्ञों के पास जा सकते हैं। इससे बड़े अस्पतालों में लंबी पंक्तियां लग जाती हैं और बहुमूल्य विशेषज्ञ समय का सार्थक उपयोग नहीं हो पाता। जैसा कि हमने ऊपर लाभ पैकेज के बारे में चर्चा की है, दोनों तरह की सेवाएं लाभप्रद हैं और अधिक गंभीर स्वास्थ्य परिणाम रोकने में प्राथमिक देखभाल महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। सरकारी और निजी क्षेत्र के कम से कम दो वैकल्पिक मॉडल हैं जो सरकारी-निजी प्रतिस्पर्धा मॉडल के संदर्भ में भारतीय परिप्रेक्ष्य में अपेक्षाकृत संगत लगते हैं। प्रथम, प्राथमिक सेवा प्रदाताओं (जैसे प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र) और सरकारी अस्पतालों का एक 'समेकित' समूह हो सकता है, जो संभवत: निजी क्षेत्र के समान ढांचा नेटवर्कों के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकता है। यह मॉडल थाईलैंड में प्रचलित है। वैकल्पिक रूप में, हम प्राथमिक देखभाल सेवा प्रदाताओं (सरकारी या निजी अथवा मिश्रित) का एक स्वायत्त नेटवर्क कायम कर सकते हैं, जिनके बीच परस्पर प्रतिस्पर्धा हो, और जो रेफरल प्रणाली के माध्यम से पृथक स्वायत्त सरकारी (या निजी) अस्पतालों के साथ जुड़ा हुआ हो। यह मॉडल मलेशिया में प्रस्तावित किया गया है।

तीसरे, ग्रामीण और दूर-दराज के क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच के विस्तार के मार्ग में वहां सेवा प्रदाताओं की सीमित उपलब्धता के कारण रुकावट आती है। स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के अनुसार, 2010 में भी सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों में फिजिशियन्स और अन्य विशेषज्ञों, प्रयोगशाला तकनीशियनों और रेडियोग्राफरों की 50 प्रतिशत से 70 प्रतिशत तक कमी थी। जलापूर्ति और विद्युत जैसी सुविधाओं की आपूर्ति में भी कमियां थीं। यह स्थिति राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (एनआरएचएम) के 5 वर्ष बाद की है। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र की स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं में चिकित्सा स्टॉफ की गैर-हाजिरी की समस्या भी जानी-मानी है। इस बारे में निजी क्षेत्र का विकल्प अपनाने में भी अपने तरह की सीमाएं हैं। ग्रामीण आबादी के लिए उपलब्ध निजी क्षेत्र की सेवाओ मे गुणवत्ता का अभाव है क्योंकि अनेक क्षेत्रों मे लोगों को अयोग्य सेवा प्रदाताओं पर निर्भर रहना पड़ता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवा प्रावधान में सुधार की चुनौती का सामना किसी जादुई छड़ी से नहीं किया जा सकता। इस के लिए भारत और अन्य देशों में विभिन्न प्रकार की मिश्रित कार्यनीतियां लागू की जा रही हैं। एनआरएचएम के अंतर्गत स्थानीय रूप में स्टॉफ भर्ती करने और स्टॉफ के प्रशिक्षण का स्तर सुधारने के प्रयास किए जा रहे हैं। सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए बजटीय आवंटनों में वृद्धि की गई है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना में निजी अस्पतालों को सूचीबद्ध करने की आवश्यकता पड़ती है ताकि सेवाओं के अभाव वाले क्षेत्रों में मोबाइल क्लिनिकों की व्यवस्था की जा सके और स्वास्थ्य शिविर लगाए जा सकें। एचएलईजी रिपोर्ट में एक ऐसे सार्वजनिक स्वास्थ्य संवर्ग का विकास करने का सुझाव दिया गया है जो प्रबंधन, निवारण और स्वास्थ्य संवर्धन गतिविधियों के लिए मौजूदा क्लिनिकल स्टॉफ की कमी पूरी कर सके। इसके लिए ग्रामीण क्षेत्रों में सेवाएं देने के लिए चिकित्सा स्टॉफ को प्रशिक्षित करने का तीन वर्षीय पाठ्यक्रम शुरू करने तथा सेवा के अभाव वाले क्षेत्रों में अधिक संख्या में नर्सिंग कॉलेजों और चिकित्सा कॉलेजों की स्थापना का सुझाव दिया गया था। वर्तमान में बड़ी संख्या में ग्रामीण क्षेत्रों में पहले से सेवाएं प्रदान कर रहे चिकित्सकों का इस्तेमाल भी एक संभावित स्रोत के रूप में किया जा सकता है। रोग प्रतिरक्षण और स्वास्थ्य संवर्धन कार्यक्रमों को लागू करने के अलावा इस समूह का इस्तेमाल अल्पावधि के लिए एक महत्वपूर्ण भर्ती आधार और चिकित्सा कार्मिकों के लिए तीन वर्षीय प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के लिए किया जा सकता है।

विभिन्न देशों के अनुभवों के संदर्भ मे, श्रीलंका और वियतनाम में ग्रामीण इलाकों को आकर्षक बनाने के लिए सरकारी डॉक्टरों को अपनी ड्यूटी के घंटों से बाहर प्राइवेट प्रैक्टिस करने की अनुमति है। थाईलैंड, मलेशिया और श्रीलंका में नये चिकित्सा स्नातकों से अपेक्षा की जाती है कि वे स्नातक उपाधि प्राप्त करने के बाद ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर सेवाएं प्रदान करें। उच्च सब्सिडी से संचालित चिकित्सा कॉलेजों से स्नातक योग्यता प्राप्त करने वाले चिकित्सकों के संदर्भ में इस नियम का पालन अपेक्षाकृत अधिक कड़ाई से किया जाता है। परंतु, जिन देशों में प्राइवेट मेडिकल कॉलेजों का वर्चस्व है, वहां ऐसी शर्तें लागू करने में कम सफलता मिली है। भारत की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है। अन्य विकल्पों में दूर-दराज के क्षेत्रों में उच्च प्रशिक्षित चिकित्सा कार्मिकों को शामिल नहीं किया जाता है। इनमें टेलीफोन पर आधारित चिकित्सा परामर्श सेवाएं शामिल हैं, जिनका इस्तेमाल भारत के कुछ हिस्सों में पहले से किया जा रहा है। अफ्रीका और भारत में वर्तमान में इस्तेमाल किए जा रहे उपचार प्रोटोकॉल्स के अंतर्गत स्थानीय लोगों द्वारा हाथ से संचालित उपकरणों का इस्तेमाल शामिल है जो सामान्य स्वास्थ्य समस्याओं के निदान के लिए प्रोटोकॉल्स का इस्तेमाल कर सकते हैं जबकि, अधिक जटिल रोगियों को सेलफोन या इंटरनेट के इस्तेमाल के जरिये शहरी क्षेत्रों में भेज कर दिया जाता है।

निष्कर्ष

बड़ी संख्या में भारत के लोगों के लिए चिकित्सा सेवाओं का विस्तार वांछनीय नीतिगत लक्ष्य है ताकि स्वास्थ्य में सुधार की संभावनाएं बढ़ाई जा सकें और करोड़ों भारतीयों द्वारा उठाई जा रही वित्तीय कठिनाइयों को कम किया जा सके। परंतु, सार्वजनिक क्षेत्र के संसाधनों के संदर्भ में यह लक्ष्य हासिल करने के लिए अधिक धन की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त बड़ी संख्या में सार्वजनिक बीमा योजनाओं का प्रभावी कार्यान्वयन जरूरी है ताकि ग्रामीण आबादी के लिए स्वास्थ्य देखभाल सेवाएं प्रदान करने में प्राथमिक देखभाल और अस्पताल उपचार सुविधा के संदर्भ में सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों की भूमिकाओं से संबंधित कवरेज और संचालन संबंधी जटिल मुद्दों का समाधान किया जा सके। ❑

(लेखक मेल्बोर्न (ऑस्ट्रेलिया) में मोनाश विश्वविद्यालय की ऐलन एंड एलिजाबेथ फिन्केल चेयर ऑफ ग्लोबल हैल्थ से संबद्ध हैं और स्कूल ऑफ पब्लिक हैल्थ एंड प्रिवेंटिव मेडिसिन में प्रोफेसर हैं। वे मोनाश विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग में सहायक प्रोफेसर भी हैं।
ई-मेल: ajay.mahal@monash.edu)

Career Launcher News www.careerlauncher.com/civils

CAREER LAUNCHER

सिविल सेवा अभ्यर्थी

Test Series Notice No. 00/2014 - 15 January 2014

सिविल सेवा (प्रारंभिक) परीक्षा, 2014

13* बार आयोजित की जाएगी

यदि आप CL की टेस्ट सीरीज़ में भाग लेते हैं तो यह आपके लिए बिल्कुल सच है। CL से जुड़ने का सबसे बड़ा लाभ यह है कि आपको हूबहू प्रारंभिक परीक्षा जैसा अनुभव प्राप्त करने के 12 अवसर प्राप्त होंगे जबकि अन्य संस्थान यह अवसर मात्र 2 या 3 बार प्रदान करते हैं। CL की टेस्ट सीरीज़ से आप के लिए प्रारंभिक परीक्षा अत्यंत सरल हो जाएगी और आपको ऐसा प्रतीत होगा कि आप 13वाँ मॉक टेस्ट दे रहे हैं। CL की टेस्ट सीरीज़ के अन्य लाभ निम्नलिखित हैं:

	UPSC	CL	अन्य
1. संपूर्ण भारत में आयोजन	✓	✓	✗
2. 10,000 से अधिक अभ्यर्थी	✓	✓	✗
3. सामान्य अध्ययन I & II एक ही दिन	✓	✓	✗
4. हिंदी एवं अंग्रेज़ी दोनो भाषाओं में प्रश्न पत्र	✓	✓	✗
5. ओएमआर शीट	✓	✓	✗
6. स्कूलों में परीक्षा	✓	✓	✗
7. ऑल इंडिया रैंक	✗	✓	✗
8. टेस्ट परिचर्चा	✗	✓	✗
9. पर्सनल फीडबैक	✗	✓	✗
10. टेस्ट के तुरंत बाद प्रश्न पत्र का हल	✗	✓	✓

सिविल सेवा प्रारंभिक परीक्षा में CL के अभ्यर्थियों की सफलता की दर 6# गुना अधिक है

30.07%
CL के अभ्यर्थियों की सफलता की दर

4.7%
अन्य अभ्यर्थियों की सफलता की औसत दर

23 मार्च 2014 से टेस्ट सीरीज़ प्रारंभ
प्रधान परीक्षा 2012 एवं प्रारंभिक परीक्षा 2013 में सफल अभ्यर्थियों के लिए विशेष ऑफर

CL के 742 अभ्यर्थी सिविल सेवा प्रधान परीक्षा, 2013 के लिए योग्य पाये गये

*CL के 12 मॉक टेस्ट + 1 UPSC की असली सिविल सेवा प्रारंभिक परीक्षा

हमारे पास उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर

CL | Civil Services Test Prep
www.careerlauncher.com/civils
/CLRocks

कक्षाओं के लिए नए बैच शीघ्र प्रारंभ, विस्तृत जानकारी के लिए कृपया निकटतम् CL सेंटर पर संपर्क करें

मुखर्जी नगरः 204/216, द्वितीय तल, विराट भवन/एमटीएनएल बिल्डिंग, पोस्ट ऑफिस के सामने, फोन – 41415241/46
ओल्ड राजेन्द्र नगरः 18/1, प्रथम तल, अग्रवाल स्वीट कॉर्नर के सामने, फोन – 42375128/29
बेर सरायः 61बी, ओल्ड जे. एन. यू. कैम्पस के सामने, जवाहर बुक डिपो के पीछे, फोन – 26566616/17
साउथ कैम्पसः 283, प्रथम तल, वेंकेटेश्वरा कॉलेज के सामने, सत्या निकेतन, फोन – 24103121/39

अहमदाबादः 2656061 | इलाहाबादः (0)9956130010 | बंगलुरूः 41505590 | भोपालः 4093447 | भुवनेश्वरः 2542322 | चंडीगढ़ः 4000666 | चेन्नईः 28154725
हैदराबादः 66254100 | इन्दौरः 4244300 | जयपुरः 4054623 | लखनऊः 4108009 | नागपुरः 6464666 | पटनाः 2678155 | पुणेः 32502168

YH-236/2014

डिजिटल प्रौद्योगिकी से ग्रामीण भारत का कायाकल्प

• उमा गणेश

डिजिटल प्रौद्योगिकियों ने न केवल हर किसी के लिए दुनिया को करीब लाने में नाटकीय प्रभाव डाला है बल्कि नेटिजन यानी नेट-नागरिक होने के नाते अब प्रत्येक व्यक्ति वैश्विक गांव का हिस्सा बन गया है। अभी तक गांवों में एक-दूसरे के प्रति अनुभव की जाने वाली अंतरंगता और अपनत्व की भावना अब वैश्विक डिजिटल गांव में भी महसूस की जाने लगी है। परिणामस्वरूप समुदायों तक पहुंचना और किसी को भी संदेश देना अब आसान हो गया है, बशर्ते ऐसा करने की हमारी वास्तविक इच्छा हो। हमने अभी हाल ही में यह देखा कि दिल्ली में सक्रिय संचार की ताकत किस प्रकार और लोगों के बीच सहयोग की भावना ने राजनीतिक एवं शासन प्रक्रिया का कायाकल्प कर दिखाया। रातों-रात जनमत तैयार करना, अनुभव साझा करना और नेताओं का निर्माण करना डिजिटल प्रौद्योगिकियों की नयी रोमांटिक प्रवृत्तियां हैं। ग्रामीण उत्थान के संदर्भ में सहयोगात्मक प्रौद्योगिकियों की क्षमता की परिणति युगांतरकारी सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के रूप में हो सकती है। हाल के समय में अरब स्प्रिंग यानी अरब देशों में विरोध प्रदर्शनों ने आज के विश्व की नयी छवि बनाने का मार्ग प्रशस्त किया, जिसमें हम रह रहे हैं। विश्व में जो भी क्रांति हुई है, वह लोगों के विश्वास और सोच में बदलाव के परिणाम के रूप में सामने आई है। सामूहिक दृष्टि से जब लोगों के व्यापक समुदाय ऐसी सूचना से प्रभावित होते हैं, तो वे अलग ढंग से सोचने लगते हैं। अतीत में ऐसे संचार का माध्यम पुस्तकें या रेडियो या सार्वजनिक सभाएं होती थीं। टेलीविजन और इंटरनेट ने विश्व में तूफान खड़ा कर दिया है और डिजिटल प्रौद्योगिकियों ने विशेष रूप से समय पर और भरोसेमंद जानकारी लोगों को मुहैया कराते हुए उनका सशक्तीकरण किया है। इसमें प्रेषित जानकारी की जांच करने की भी व्यवस्था है। अत: इस बात पर विचार करना दिलचस्प होगा कि ग्रामीण लोगों को अपने जीवन से संबंधित विभिन्न पहलुओं के बारे में जानकारी हासिल करने के लिए किस तरह प्रेरित किया जा सकता है ताकि वे जानकारी को साझा कर सकें और अपने लिए बेहतर अवसर पैदा कर सकें।

सूचना तक बेहतर पहुंच और मांग के ढांचे और जीवन शैली की बदलती प्रवृत्तियों से भारतीय ग्रामीण बाजार का कायापलट हो रहा है। रूरल मार्केटिंग डॉट ओआरजी के अनुसार भारत में 6.27 लाख गांव हैं और ग्रामीण भारत में व्यापार में पिछले दशक के दौरान करीब 11 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर्ज हुई है। 2015 तक एफएमसीजी बिक्री बढ़कर 33 अरब अमरीकी डॉलर पर पहुंच जाने का अनुमान है, जिसमें से 22.1 अरब अमरीकी डॉलर का योगदान ग्रामीण क्षेत्रों का होगा। योजना आयोग की रिपोर्ट के अनुसार 2011-12 में गरीबी का स्तर घटकर 22 प्रतिशत रह गया है जो 2004-05 में 37.2 प्रतिशत था। यह अत्यंत रचनात्मक घटना है, लेकिन आगे चुनौती सिर्फ यही नहीं होगी कि इसमें और कमी लाई जाए बल्कि यह भी सुनिश्चित करना होगा कि जो लोग गरीबी की रेखा से ऊपर आए हैं, वे वहां बने रहें और विकास की प्रक्रिया का अभिन्न अंग बनें। इसके लिए अन्य बातों के अलावा शिक्षा और कौशल विकास पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता होगी ताकि आजीविका के बेहतर अवसर तलाश किए जा सके।

यह एक व्यापक स्वीकृत तथ्य है कि डिजिटल प्रौद्योगिकियां ग्रामीण विकास और रूपांतरण के लिए अधिक कारगर सिद्ध होंगी। ग्रामीण क्षेत्र के लिए प्रस्तावित की जा रही आईसीटी (सूचना संचार प्रौद्योगिकी) को हम मोटे तौर पर तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं। पहली श्रेणी में वे समाधन शामिल हैं जिनका लक्ष्य 'सशक्तीकरण' है। दूसरी श्रेणी 'सक्षमता' से संबद्ध है और तीसरी श्रेणी का संबंध 'बाज़ार विस्तार' के साथ है। यह समझने के लिए कि आईसीटी किस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र में युगांतरकारी प्रभाव डाल सकती है, हमें इन आयामों के कुछ उदाहरणों पर नज़र डालनी होगी।

जब हम प्रथम आयाम-सशक्तीकरण की जांच करते हैं, तो ई-चौपाल एक उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में सामने आती है। ई-चौपाल दस राज्यों में 6,500 से अधिक कियॉस्कों के जरिये 40 हजार से अधिक गांवों में चालीस लाख लोगों को सेवाएं प्रदान कर रही हैं। इसे सक्षम आपूर्तिशृंखला के उदाहरण के रूप में अक्सर उद्धृत किया जाता है। इससे किसानों को संबद्ध जानकारी समय पर मिलने से उनका सशक्तीकरण हुआ है और वे अपनी उपज के लिए बेहतर दाम पाने में सक्षम हुए हैं। इसमें समुदाय केंद्रित दृष्टिकोण अपनाने के कारण किसानों को अन्य अवसरों की जानकारी प्रदान करना भी संभव हुआ है। इन अवसरों में बीमा और खेती प्रबंधन पद्धतियां शामिल हैं।

दूसरे आयाम-'सक्षमता' का उदाहरण ई-शासन प्रणाली है, जिसमें आईटी के जरिये पारदर्शिता और बेहतर शासन की व्यापक संभावनाएं हैं। भूमि रिकॉर्डों जैसे क्षेत्रों में इस प्रणाली के सफल कार्यान्वयन से महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश और अन्य राज्यों में कुप्रवृत्तियां दूर करने और नागरिकों को कानूनी स्वामित्व की गारंटी देने की दिशा में वास्तव में महत्वपूर्ण बदलाव आया है। हाल के समय में आधार को सशक्तीकरण की दिशा में एक नये साधन के रूप में देखा जा रहा है जो उनकी पहचान की पुष्टि करता है। उच्चतम न्यायालय के हाल के फैसले और राजनीतिकरण के आधार पर इस योजना के विरोध के बावजूद सुरक्षा और निजता की दृष्टि से आधार मौद्रिक फायदों तक पहुंच प्रदान करने के प्रयास के रूप में आईसीटी समाधन का एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जो सही पहचान कायम करता है और इस पद्धति के जरिये आर्थिक प्रणाली की गतिशीलता में ऊर्जा

पैदा करते हुए ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विस्तार का प्रयास करता है।

तीसरा आयाम, बाजार विस्तार से संबद्ध है, जिसके लिए डिजिटल प्रौद्योगिकियों का इस्तेमाल किए जाने के कई उदाहरण मिले हैं। ऑनलाइन पोर्टलों के जरिये पैदा की गई जागरुकता की बदौलत पहले की तुलना में अधिक पर्यटक आकर्षित किए जाने से देश के दूर-दराज के हिस्सों में ग्रामीण और धरोहर पर्यटन में व्यापक वृद्धि हुई है। ई-कामर्स के जरिये डिजिटल प्रौद्योगिकियों का स्मार्ट इस्तेमाल संभावित ग्राहकों से सीधा संपर्क कायम करता है जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में बड़ी संख्या में कारीगरों और कृषि आधारित छोटे उद्यमियों को नये बाज़ारों से नया व्यापार करने की सुविधाएं प्राप्त हुई हैं। पूर्वोत्तर राज्यों में इंटरनेट माध्यम से उत्पादों के विपणन की सुविधा प्रदान करके बुनकर समुदाय के बीच महिलाओं की आजीविका में मदद की जा रही है। इससे उन्हें ग्राहक की आवश्यकता के अनुसार आर्डर प्राप्त करने और दुकान से बाहर बिक्री की सुविधा प्रदान की जाती है, जिसमें महिलाओं को अपना सामान प्रदर्शित करने के लिए लंबी यात्राएं करने से मुक्ति मिली है। हमें ग्रामीण भारत में बदलाव लाने के लिए एक आयोजना तैयार करने की आवश्यकता है ताकि प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करते हुए ग्रामीण आधार से बाहर वृहत्तर ग्राहकों तक उनकी सेवाओं का विपणन किया जा सके। इसके लिए उनके परंपरागत शिल्पों और कलाओं या कृषि उत्पादों के विपणन की वेब आधारित व्यवस्था की जा सकती है ताकि विश्वभर में ग्राहकों के लिए उन्हें उजागर किया जा सके अथवा स्मार्ट संचारकार्य नीतियों का इस्तेमाल करते हुए उनके गांवों को अवकाश पर्यटन लक्ष्य बनाते हुए ग्राहकों को उनके ठिकाने तक पहुंचाया जा सके।

डिजिटल प्रौद्योगिकियों के इस्तेमाल के जरिये सभी तीनों आयामों से हमें लाभ दिखाई देते हैं, लेकिन फिर भी, महत्वपूर्ण उत्थान और स्थाई विकास हम तभी महसूस कर सकते हैं जब ग्रामीण क्षेत्रों में क्रय क्षमता भी बढ़े। भारत की ग्रामीण आय मौजूदा 572 बिलियन अमरीकी डॉलर से बढ़ कर 2020 तक 1.8 ट्रिलियन होने का अनुमान है। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली देश की 70 प्रतिशत आबादी भारत के सकल घरेलू उत्पाद में करीब 50 प्रतिशत योगदान करती है। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिव्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद वर्ष 2000 से शहरी क्षेत्रों की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ रहा है, जो 4.7 प्रतिशत की तुलना में 6.2 प्रतिशत सीएजीआर है। अतः ज्यादातर कंपनियां बाज़ार में बड़ा हिस्सा हासिल करने के लिए शहरी क्षेत्र से ग्रामीण क्षेत्र पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता महसूस करने लगी हैं। विक्रेताओं को जिस बड़ी चुनौती का सामना करना पड़ रहा है वह यह है कि बिखरे हुए ग्रामीण लोगों तक कैसे पहुंचा जाए, जिनकी विविध संस्कृतियां और विविध भाषाएं हैं। वे ऐसा करने के लिए कम लागत वाले साधनों की तलाश कर रही हैं। यह लक्ष्य हासिल करने में इस्तेमाल किए जाने वाले साधनों में डिजिटल प्रौद्योगिकी एक हो सकती है, लेकिन सवाल यह है कि भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में इसका कार्यान्वयन कितना व्यावहारिक है। इस संदर्भ में ग्रामीण भारत में डिजिटल प्रसार और इस्तेमाल की कुछ महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों पर विचार किया जा सकता है।

इंटरनेट एंड मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया के अनुसार जून 2012 तक भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले 83.3 करोड़ लोगों में से 3.8 करोड़ लोग इंटरनेट का इस्तेमाल करते थे और उनमें से 12 प्रतिशत ऐसे हैं जो अपने मोबाइल फोनों के जरिये इंटरनेट एक्सेस कर सकते हैं। उल्लेखनीय है कि मोबाइल फोनों पर इंटरनेट एक्सेस करने वाली यह आबादी मात्र 2 वर्षों में 7 गुणा बढ़ी है - 2010 में जहां 5 लाख लोग ऐसा करते थे, वहीं 2012 में उनकी संख्या बढ़ कर 36 लाख पर पहुंच गई है। ग्रामीण क्षेत्रों में मोबाइल फोन के प्रसार में वृद्धि में मदद करने वाले महत्वपूर्ण घटकों में हैंडसेटों के मूल्यों में कमी आना, बैटरी की लाइफ बढ़ना, डाटा शुल्क में कमी और नेटवर्क ढांचे में सुधार जैसी बातें शामिल हैं। यह प्रवृत्ति जारी रहने की संभावना है। प्रयुक्त मोबाइल फोनों के लिए अभी भी एक महत्वपूर्ण बाजार उपलब्ध है, जिनमें ज्यादातर फोन ऐसे हैं जो इंटरनेट से कनेक्टेड नहीं हैं। अनुमान है कि यूनीक मोबाइल इस्तेमालकर्ता करीब 10 करोड़ हैं। मनोरंजन और संचार के लिए मोबाइल फोनों के माध्यम से इंटरनेट के प्रति जागरुकता और पहुंच का इस्तेमाल वर्तमान में अन्य ऑनलाइन सेवाओं, जैसे ई-कामर्स, शिक्षा, रोज़गार और सोशल मीडिया की तुलना में सर्वाधिक तेजी से बढ़ रहा है, जबकि अन्य सेवाओं के लिए इंटरनेट के इस्तेमाल में धीरे-धीरे लेकिन निरंतर वृद्धि हो रही है।

आने वाले वर्षों में जैसे-जैसे ग्रामीण बाज़ारों में मोबाइल और इंटरनेट का इस्तेमाल बढ़ेगा, ग्रामीण बाज़ारों को लक्ष्य बनाने वाले संगठनों को बाज़ार के प्रति आज अपनाए जा रहे दृष्टिकोण से व्यापक भिन्न विपणन नीति तैयार करने की आवश्यकता होगी। शहरी बाज़ारों के विपरीत, ग्रामीण बाज़ारों में चुनौती लक्षित पहुंच कायम करने की है न कि ध्यान आकर्षित करने की। ग्रामीण आबादी में महत्वपूर्ण अंतरों को देखते हुए, एक ही प्रकार की दृष्टि या कार्यनीति काम नहीं करेगी। व्यक्तियों के सुदृढ़ डाटा बेस और उनके स्वरूपों के विश्लेषण के साथ उत्पाद एवं सेवाओं के लिए लक्षित विपणन नीति सफल हो सकती है। ग्रामीण ग्राहक परंपरागत रूप में अपने क्रय संबंधी निर्णयों के लिए सामुदायिक अनुशंषाओं को महत्व देते हैं। रुचि के क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करते हुए छोटे समुदायों के साथ सोशल मीडिया मार्केटिंग का लाभप्रद विकास किया जा सकता है और उत्पाद एवं सेवाओं को प्रोत्साहित करने के लिए उसे प्रयुक्त किया जा सकता है। स्वयंसेवी संगठनों, वित्तीय संस्थानों और सरकारी एजेंसियों की भागीदारी के साथ सामाजिक मंचों का निर्माण किया जा सकता है तथा इन मंचों के जरिये ग्रामीण ग्राहकों को शालीनता के साथ अपने उत्पाद और सेवाएं खरीदने के लिए प्रेरित करने की आवश्यकता है। ग्रामीण विपणन में आईसीटी का प्रारंभिक इस्तेमाल करने वालों में आईटीसी और एचएलएल दो बेहतर उदाहरण हैं, जो ग्रामीण ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए ऐसी कार्यनीतियों का सफलता पूर्वक इस्तेमाल कर रहे हैं। स्मार्टफोन और टेबलेट्स जैसे व्यक्तिगत उपकरण विपणन संगठनों के लिए ऐसे निर्दोष मीडिया हैं जो नये ढंग से ऐसे ग्राहकों तक पहुंच सकते हैं।

नये प्रस्तावों के लिए ग्रामीण ग्राहकों को आकर्षित करने हेतु व्यापारिक संगठनों को संभावित ग्राहकों के साथ वर्षभर संचार और संपर्क बनाए रखने के लिए निवेश करने की आवश्यकता होगी। अनेक संगठनों ने इसमें कठिनाई महसूस की है क्योंकि लाभ के लिए समय सीमा का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। डिजिटल प्रौद्योगिकियों के साथ ऐसे क्षेत्रों की पहचान करते हुए, जहां इनका प्रसार और इस्तेमाल का पैटर्न बेहतर है, वहां कंपनियां अपेक्षाकृत कम खर्चीले मीडिया का इस्तेमाल करते हुए अपने प्रस्ताव पेश कर सकती हैं और धीरे-धीरे अपने अनुभवों के आधार पर अन्य

क्षेत्रों में विस्तार कर सकती हैं। मोबाइल फोनों के जरिये कनेक्टेड ग्रामीण आबादी इंटरनेट का इस्तेमाल मुख्य रूप से मनोरंजन और संचार के प्रयोजन से करती है। अन्य विषयों के लिए मोबाइल का इस्तेमाल न किए जाने के कारणों में एक यह भी है कि स्थानीय भाषाओं में संबद्ध विषयवस्तु की उपलब्धता का अभाव है। इस आवश्यकता पर ध्यान देकर व्यापारी बाज़ार का लाभ उठा सकते हैं और यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि ऐसी सामग्री दिलचस्प ढंग से भारतीय भाषाओं में ग्रामीण आबादी को उपलब्ध कराई जाए जो उनके निर्णय लेने में प्रासंगिक हो।

ग्रामीण क्षेत्रों के साथ पहुंच कायम करने में कनेक्टिविटी हालांकि एक प्रमुख चुनौती बनी हुई है फिर भी इस दिशा में कुछ नई पहल की गई हैं जैसे ओडिशा में डाकनेट और गुजरात में बाबा साहेब अंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी (बीएओयू) में आईसीटी से सुसज्जित बसें, जिनका इस्तेमाल करके ग्रामीण नागरिक अपनी जरूरतों के लिए इंटरनेट एक्सेस करने में सक्षम होते हैं। व्यक्तिगत उपकरणों और इंटरनेट एक्सेस का प्रसार धीरे-धीरे बढ़ेगा, ऐसे में विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा स्थापित कॉमन सर्विसेज सेंटर काफी हद तक लाभदायक हो सकते हैं। कॉमन सर्विस सेंटरों की घोषणा की गई और बड़े धूम-धड़ाके से उन्हें रोल आउट किया गया, लेकिन एक मजबूत व्यापारिक मॉडल के साथ सरकारी-निजी भागीदारी की व्यवस्था करना अभी बाकी है। ग्रामीण बाज़ारों का लाभ उठाने वाले संगठन इन सेंटरों की अनदेखी नहीं कर सकते और वास्तव में उनको कुछ राज्यों में हासिल की गई सफलताओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए और उसका इस्तेमाल अपने ग्रामीण बाज़ारों में योजनाएं बनाने में करना चाहिए। ग्रामीण नेट-नागरिकों के पैटर्न के इस्तेमाल को समझते हुए, यह तय करते हुए कि उनके साथ कैसे संपर्क बनाए रखा जाए, यह जरूरी होगा कि इंटरनेट सक्षम और गैर-सक्षम मोबाइल फोन के इस्तेमाल को बढ़ावा दिया जाए और देसी भाषाओं में उचित विषयवस्तु सृजित की जाए, ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल विपणन को सफल बनाया जा सके।

आईटी उत्पादों/समाधनों के मामले में विशेष रूप से ग्रामीण ग्राहक को ध्यान में रख कर गिने-चुने प्रस्ताव डिजाइन किए गए हैं। इसके अतिरिक्त ज्यादातर समाधन या उत्पाद - चाहे वे आईटी से संबंधित हों अथवा गैर-आईटी हों, उनका लक्ष्य आबादी की जरूरतें पूरी करना होता है और जरूरी नहीं है कि उनसे मांग में वृद्धि हो। जब आईटी समाधान नयी मांग पैदा करने को ध्यान में रख कर डिजाइन किए जाएंगे तो डिजिटल प्रौद्योगिकियों से संचालित ग्रामीण अर्थव्यवस्था का समग्र प्रसार होगा। हालांकि सरकार डिजिटल अंतर दूर करने की इच्छुक है और उसने इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए अनेक परियोजनाएं शुरू की हैं, फिर भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने के लिए अधिक आईटी उत्पादों और समाधानों के निर्माण की भारी आवश्यकता है। ग्रामीण क्षेत्रों को लक्षित करते हुए डिजिटल प्रौद्योगिकियों के इस्तेमाल के बारे में हाल ही में, कई नये सामाजिक उद्यमों पर विचार किया जा रहा है। उदाहरण के लिए ग्रामीण बीपीओ की ओर कुछ उद्यमियों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। हालांकि उचित गुणवत्ता और व्यापार की संभावना के साथ अनेक स्थानों पर इस मॉडल का अनुकरण आसान नहीं रहा है। तमिलनाडु, केरल और गोवा जैसे राज्यों में, जहां ग्रामीण और शहरी जीवनशैलियों के बीच अंतर और युवाओं की आकांक्षाओं के बीच ग्रामीण बनाम शहरी स्थानों की दृष्टि से अंतर बहुत अधिक नहीं रहा है, हम एक दिलचस्प घटना देख रहे हैं कि दोनों क्षेत्रों के ग्राहकों के लिए एक ही तरह के उत्पाद और सेवाएं प्रासंगिक बन गई हैं। फिर भी, क्रयशक्ति को देखते हुए एक तरह का अंतर बना हुआ है। आईटी उत्पाद और समाधानों को डिजाइन करने के अलावा समान रूप से एक्सेस प्रदान करना भी ध्यान देने का विषय है। आईएसपीज़ और राज्य सरकारें कनेक्टिविटी के पूर्ण प्रसार की दिशा में पूरा श्रम कर रही हैं और यह कुछ समय की बात है कि यह सपना पूरा हो जाएगा। ऑनलाइन टिकेटिंग और बिजली के बिलों के भुगतान, वैवाहिक विज्ञापनों के रूप में हम ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल प्रौद्योगिकी की शक्ति रोजमर्रा की जिंदगी में महसूस कर रहे हैं। घरों में डिजिटल उपकरणों तक एक्सेस न होने की स्थिति में लोग साइबर कैफे और साझा डेस्कटॉपों का इस्तेमाल कर रहे हैं जो प्रयोग की दृष्टि से सुगम और कम ख़र्चीले एक्सेस विकल्प हैं।

ग्रामीण विकास से संबद्ध महत्वपूर्ण पक्षों, जिनमें निचले स्तर के ग्रामीण संगठन और स्वयंसेवी संगठन, सरकार, प्रौद्योगिकी प्रदाता और ग्राम केंद्रित सेवा प्रदाता शामिल हैं, को एक साथ मिल कर प्रयास करना होगा और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विस्तार के लिए समेकित दृष्टिकोण अपनाना होगा। नागरिक सेवा केंद्रों (सीएससी), जिनका डिजाइन इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए तैयार किया गया था, और कई राज्यों में धूम-धड़ाके से जिनकी शुरुआत की गई थी, दुर्भाग्य से वे निवेशकों के लिए आकर्षक सक्षम व्यापार मॉडल के अभाव और ग्रामीण ग्राहकों के अनुकूल प्रस्ताव न दे पाने के कारण सफल नहीं हो पाए। प्रौद्योगिकी सक्षम ऐसी शिक्षा प्रणाली जो विद्यार्थियों को विशेषज्ञ बनाने और शैक्षिक तकनीकों को सरलता से अपनाने में मददगार हो, की आवश्यकता शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा ग्रामीण भारत में अधिक है। ऐसी प्रणाली में विद्यार्थियों के समक्ष विकल्प होने चाहिए। देसी भाषाओं में कौशल उन्मुखी कार्यक्रमों के प्रति हमें एमओओसी जैसा दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है, जिसे ग्रामीण इलाकों में नागरिक सेवा केंद्रों और स्कूलों के जरिये वितरित किया जा सके। केरल में 34 आईटीआई व स्थानों को शामिल करके चलाई जा रही परियोजना इस बात का उदाहरण है कि बिजली और अन्य ढांचागत मुद्दों की चुनौतियों के बावजूद किस तरह कल्पना और प्रौद्योगिकी के मिश्रण से ग्रामीण युवाओं की जरूरतें पूरी की जा सकती हैं। इस परियोजना के अंतर्गत ज्यादातर संस्थान राज्य के दूर दराज के हिस्सों में स्थित हैं जिनका इस्तेमाल विद्यार्थियों को रोज़गार सक्षम कौशल में प्रशिक्षण देने के लिए किया जा रहा है। ग्लोबल टेलेंट ट्रैक द्वारा इसके लिए सिस्को के वेबेक्स सिस्टम का इस्तेमाल किया जा रहा है जो द्विभाषी विषयवस्तु और प्रशिक्षण वितरण सुविधा से युक्त है।

आईसीटी में नवाचार के जरिये ग्रामीण परिवेश में बदलाव के लिए एक दीर्घावधि दृष्टिकोण की आवश्यकता है जिसमें जोखिम उठाने और विकलता को सहन करने की क्षमता हो। 'समावेशी भारत' के लक्ष्य से संबंधित कुछ वर्तमान उद्यम कोष इन प्रस्तावों का समर्थन करते हैं, फिर भी ऐसे उद्यम कोष बनाने की आवश्यकता है जिनमें ग्रामीण भारत के लिए नवाचार पर विशेष ध्यान केंद्रित हो, क्योंकि शहरी मॉडलों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में मांग सृजन और बाज़ार कार्यप्रणाली की विशेषताएं और ग्राहकों की मानसिकता भिन्न है। कृषि क्षेत्र में 2 प्रतिशत वृद्धि दर, और संसाधनों की दुर्लभता को देखते हुए गांवों को डिजिटल प्रौद्योगिकियों से संचालित ज्ञान अर्थव्यवस्था से जोड़ने का उद्देश्य पूरा करने के लिए जोरदार प्रयास किए जाने चाहिए ताकि स्थाई विकास की योजना बनाई जा सके। ❑

(लेखक ग्लोबल टेलेंट ट्रैक के मुख्य कार्यकारी अधिकारी हैं।
ई-मेल : umaganesh@gttconnect.com)

क्या आप जानते हैं ?

इंडिया बैकबोन इंप्लीमेंटेशन नेटवर्क

12वीं पंचवर्षीय योजना की महत्वपूर्ण नीतियों, कार्यक्रमों और परियोजनाओं में तेज़ी लाने के लिए योजना आयोग ने इंडिया बैकबोन इंप्लीमेंटेशन नेटवर्क (आईबीआईएन) परियोजना शुरू की है। यह परियोजना 19 अप्रैल, 2013 को शुरू की गई। इस परियोजना का अंतिम उद्देश्य समग्र विकास को गति देना है।

आईबीआईएन को जिला, राज्य और केंद्र में कार्यान्वयन के स्तर पर विभिन्न कारणों से रुकी हुई परियोजनाओं और योजनाओं को तलाशना है। स्वास्थ्य शिक्षा और अन्य जन सेवाओं की लचर हालत के लिए विभिन्न एजेंसियों के बीच कमजोर समन्वय, कमजोर कार्यान्वयन और दोषपूर्ण प्रणाली जिम्मेदार है। समन्वय का असमंजस दूर करने, सहयोग की संभावना और कार्यान्वयन की इच्छा की ज़रूरत पर जोर दिया जा रहा है।

आईबीआईएन जापान की बहुत सफल परियोजना टोटल क्वालिटी मूवमेंट, टीक्यूएम, पर आधारित है। वर्ष 1960 से 70 के दशक के दौरान जापान की निजी और सरकारी क्षेत्र की क्षमताओं में परिवर्तन किया गया। जापान में विश्वविद्यालयों और विनिर्माणकर्ताओं आदि की भूमिका से तकनीकों और प्रणालियों में सुधार किया गया। गुणवत्ता और कुशलता पर जोर देने के कारण आपूर्ति प्रणाली में जापान सभी स्तरों पर उच्च मानक का प्रतीक बन गया। आईबीएनआई सहयोग समन्वय और कार्यान्वयन के उपाय करता है। परियोजना के इन उपायों का परिणाम आने में कुछ समय लग सकता है। लेकिन ऐसी साहसिक और बहुप्रतीक्षित पहल की जरूरत थी।

टीक्यूएम के जरिये जापान में सुधार की प्रक्रिया को तेज़ करने के लिए संगठनों के भीतर और संगठनों के बीच टीम को तकनीक दी गई और उपाय सुझाए गए। योजना आयोग ने इसके लिए अन्य देशों कोरिया, ब्राजील, मलेशिया और जर्मनी में भी चल रही विभिन्न प्रणालियों का अध्ययन किया है।

बारहवीं पंचवर्षीय योजना में नियोजन, संचार और कार्यान्वयन में सुधार करने के लिए कई नवाचार शुरू किए गए हैं।

महत्वपूर्ण क्षेत्रों में तय राष्ट्रीय लक्ष्य हासिल करने के लिए आईबीआईएन के तहत देश में विभिन्न एजेंसियों के नेटवर्क के जरिये बेहतर सहयोग समंवय और नियोजन के लिए तकनीक और कौशल का वितरण किया जाएगा। इन एजेंसियों में एडमिनिस्ट्रेटिव स्टॉफ कालेज ऑफ इंडिया, इंडियन स्कूल ऑफ बिजनेस, यूएनडीपी और विश्व बैंक आदि शामिल होंगे।

भारत में विकास की व्यापक संभावनाएं हैं लेकिन इसके साथ ही यहां विरोधाभास भी बहुत है। कार्यान्वयन की विफलता का कारण व्यवस्थागत खामियों में मौजूद है। व्यवस्था या प्रणाली में सभी संबद्ध पक्षों की भूमिका और सोच में स्पष्टता और उसे साझा करने की जरूरत है। आईबीआईएन को जापान के टीक्यूएम की तरह बनाया गया है और उम्मीद है कि इससे शिक्षण संस्थानों में वर्षा होगी। इनमें गुणवत्ता निर्धारित करने के उपाय और संवाद तथा समानता स्थापित करने की सामाजिक तकनीक सहित अन्य उपायों और तकनीकों पर जोर दिया जाएगा। ❑

वापसी गिरवी

वापसी गिरवी एक ऐसा ऋण जिससे लोग अपने मकान को नकदी में बदल सकते हैं। इसे मकान पूंजी परिवर्तन ऋण भी कहा जाता है। अगर किसी वरिष्ठ नागरिक के पास अपना मकान है या इसमें हिस्सेदारी है तो वह ऋण लेने का हक़दार है। वापसी गिरवी में किसी मूल धन या ब्याज के भुगतान की जरूरत नहीं है जबकि मकान ऋण लेनदार के कब्जे में रहता है। इस ऋण का भुगतान केवल उसी स्थिति में करना होता है जब मकान को बेचा जा रहा हो या इसे छोडा जा रहा हो।

वापसी गिरवी का ऋण केवल 62 वर्ष या इससे अधिक आयु के व्यक्ति के लिए ही उपलब्ध है। विभिन्न देशों में यह आयु अलग-अलग है। वापसी गिरवी ऋण का मकसद उन बुजुर्ग लोगों की मदद करना है जिनकी सीमित आय है और उनके अपने निजी व्यय के लिए पर्याप्त धन नहीं है। वापसी गिरवी में दी गई संपत्ति के किसी भी इस्तेमाल पर कोई रोक नहीं है। परंपरागत गिरवी व्यवस्था में ऋणदाता को भुगतान करना होता है। वापसी गिरवी ऋण के तहत संपत्ति का मालिक़ाना हक़ मालिक के पास ही बना रहता है। देनदार कभी भी संपत्ति नहीं लेता। लेनदार की पत्नी या पति की मृत्यु के बाद भी संपत्ति उन्हीं की बनी रहती है।

विकसित देशों में ऐसे बहुत सारे लोग है जो सेवानिवृत्त के बाद के जीवन की पर्याप्त तैयारी नहीं करते। ऐसे समय में जब जीवन अवधि बढ़ गई है तो उन्हें अपने जीवन को चलाने के लिए धन चाहिए। ऐसे मामलों में वापसी गिरवी ऋण बेहतर विकल्प है। ❑

(संकलनः हसन जिया, वरिष्ठ संपादक योजना उर्दू)

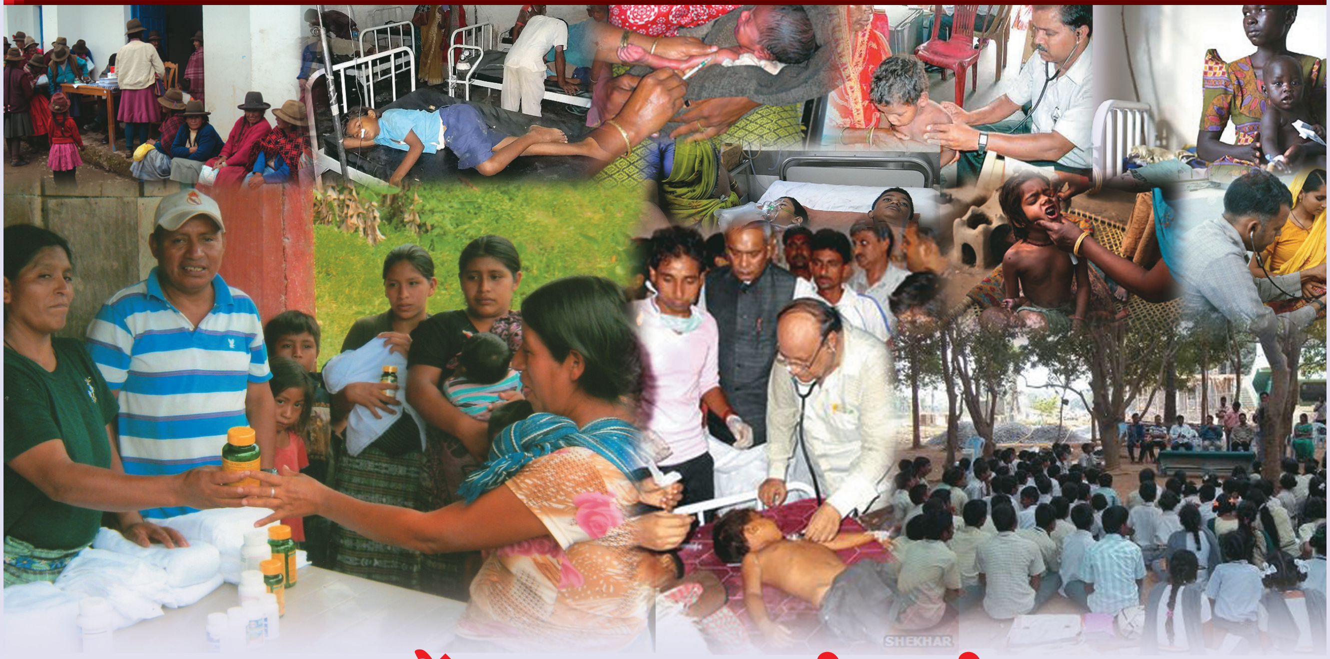

भारत में जनस्वास्थ्य की हक़ीक़त

• नीलू अरुण

सच यह है कि भारत की पारंपरिक और बेहद महत्त्वपूर्ण आरोग्य प्रणाली आयुर्वेद, सिद्धा, प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग की समृद्ध विरासत के बावजूद आज इनकी स्थिति अपने देश में भी अच्छी नहीं है

भारत में जनस्वास्थ्य की अवधारणा और स्थिति की यदि हम चर्चा करते हैं तो कोई 68 वर्ष पूर्व सर जोसेफ भोरे समिति की सिफ़ारिशें याद आती हैं जो आज भी पूरी तरह लागू नहीं हो पाई है। भोरे समिति की तीन महत्वपूर्ण अनुशंसाओं को हमेशा याद किया जाता है। उनकी पहली अनुशंसा थी कि भुगतान का सामर्थ्य नहीं होने पर भी कोई नागरिक स्वास्थ्य सेवाओं से वंचित न हो। दूसरा रोग निवारण तथा रोग निरोधक का कार्य एक ही संस्था द्वारा परिचालित किया जाए। तीसरा यह कि जनस्वास्थ्य शासन की जिम्मेवारी है। दुखद यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के 66 वर्षों के बाद भी इस पर पूरी तरह से अमल नहीं किया गया।

आज स्वास्थ्य पर सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 6.1 प्रतिशत ख़र्च होता है। योजना आयोग के आंकड़ों के अनुसार केवल 1.4 प्रतिशत ख़र्च केंद्र और राज्य सरकारें वहन करती हैं, शेष 4.7 प्रतिशत का बोझ जनता पर डाल दिया जाता है। 2012-13 के बजट प्रस्ताव में तो सरकार ने स्वास्थ्य के लिये 34,448 करोड़ रुपये का ही प्रावधान रखा है, जो कुल बजट का 2.3 प्रतिशत और सकल घरेलू उत्पाद का केवल 0.38 प्रतिशत है। मतलब यह कि राज्य सरकारों के मत्थे लगभग 1.1 प्रतिशत की रक़म स्वास्थ्य पर ख़र्चे के लिये डाल दी गई है। हम यह कहना चाहते हैं कि केंद्र सरकार स्वास्थ्य पर (जीडीपी) का 3 से 4 प्रतिशत और राज्य सरकारें 2 से 3 प्रतिशत रकम ख़र्च करें, जिससे जनता के सामने जीने का संकट पैदा नहीं हो। जाहिर है, जब हम इतनी रकम की बात करते हैं तो देश के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह का वह वक्तव्य भी ध्यान में आता है कि 'पैसे पेड़ पर नहीं लगते।'

हम पैसों की समस्या को लेकर भी सुझाव देना चाहते हैं पिछले वर्ष केंद्र सरकार ने नैगम राजस्व वसूली में 5.3 लाख करोड़ रुपये की छूट बड़े घरानों को दी है, जो जीडीपी के 5.95 प्रतिशत के आसपास है। अगर यह छूट बड़े घरानों को नहीं दी गई होती तो जनता के स्वास्थ्य पर खुले हाथ से ख़र्च किया जा सकता था। सरकार को चाहिये कि वह बड़े घरानों से कड़ाई से राजस्व की वसूली करे। 2007-08 में केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा जो राजस्व वसूली की गई थी, वह भारत के जीडीपी का 17.4 प्रतिशत था। 2010-11 में यह आंकड़ा गिरकर 14.7 प्रतिशत रह गया। इस गिरते राजस्व की वसूली को रोका जा सकता है। कुल करों में प्रत्यक्ष करों की एक तिहाई हिस्सेदारी है तथा अप्रत्यक्ष करों की हिस्सेदारी दो तिहाई है। इसे बदलने की ज़रूरत है, जिससे आम जनता से करों का बोझ हटा कर उसे आभिजात्य वर्ग पर डाला जा सके,

जो करोड़ों-अरबों रुपये महंगे खेलों में उड़ा कर खुश होता है। लाखों-करोड़ों रुपयों के होने वाले भ्रष्टाचार को रोक कर सरकारी ख़ज़ाने को बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार हम चाहते हैं कि शासन जनस्वास्थ्य पर होने वाले खर्च की व्यवस्था सुनिश्चित करे और जनस्वास्थ्य पर अधिक से अधिक ख़र्च करे।

1995 में जारी एक रिपोर्ट में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अत्यधिक गरीबी को अंतर्राष्ट्रीय वर्गीकरण में एक रोग माना। इसे जेड 59.5 का नाम दिया गया है। रिपोर्ट में कहा गया कि गरीबी तेज़ी से बढ़ रही है। और इसके कारण विभिन्न देशों में और एक ही देश के लोगों के बीच की दूरियां बढ़ती जा रही हैं। इससे स्वास्थ्य समस्या और गंभीर हुई हैं। एक आकलन के अनुसार, भारत में पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों में प्रत्येक तीन में से दो बच्चे कुपोषित हैं। इन बच्चों में से चालीस प्रतिशत बच्चे बिहार के हैं।

जाहिर है भोरे समिति ने 'एलोपैथी' को सर्वाधिक महत्व दिया और स्वास्थ्य का पूरा ढांचा एलोपैथी की ही बुनियाद पर खड़ा करने का रोड मैप बनाया। उस ढांचे का अहसास आज भी हम सब लोग कर रहे हैं और सच यह है कि भारत की पारंपरिक और बेहद महत्वपूर्ण आरोग्य प्रणाली आयुर्वेद, सिद्धा, प्राकृतिक चिकित्सा, योग की समृद्ध विरासत के बावजूद आज इनकी स्थिति अपने देश में भी अच्छी नहीं है। होमियोपैथी की बात करूं तो 200 वर्ष पुरानी यह चिकित्सा पद्धति एलोपैथी की विसंगतियों से ही पनपी और उस समय के विलक्षण एलोपैथ डॉ. सैमुअल हैनिमैन ने एलोपैथी की कमियों को पहचान कर रोग को जड़-मूल से खत्म करने की एक बेहद सुरक्षित एवं वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति 'होमियोपैथी' को जन्म दिया। आज की हक़ीक़त है कि होमियोपैथी की विकास दर बिहार के विकास दर की दो गुनी है। यानी सालाना 25 फीसदी की रफ्तार से विकास कर रही होमियोपैथी तथा भारत की देसी चिकित्सा पद्धति को अब देश के स्वास्थ्य ढांचे में एलोपैथी की ही तरह मुख्यधारा में लाने की ज़रूरत है। हालांकि योजना आयोग ने अपनी 12वीं योजना दस्तावेज में स्पष्ट किया है कि आयुष पद्धतियों को मुख्यधारा में लाया जाए। केंद्रीय वित्त मंत्री ने वर्ष 2013-14 के बजट भाषण में भी स्पष्ट किया है कि सरकार आयुष पद्धतियों को मुख्यधारा में लाने का संकल्प व्यक्त करती है।

हमें इस बात की भी विवेचना कर लेनी चाहिये कि अपने देश में बीमारियां किस तरह की होती हैं? अगर हमें पता हो कि अपने देश में बीमारियों का प्रकार किस तरह का है तो इसके निराकरण की दिशा में भी बेहतर तरीके से प्रयास किया जा सकता है। स्वास्थ्य मंत्रालय के अनुसार उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, कैंसर, डायबिटीज, श्वसन तंत्र की बीमारी तथा मानसिक रोग के कारण मौत के मुंह में समाने वालों की संख्या 42 प्रतिशत है। संक्रमण यानी छूत तथा फैलने वाली बीमारियां जैसे-कालाजार, डेंगू, चिकनगुनिया, मलेरिया, पेट की बीमारी तथा जापानी एन्सेफेलाइटिस के कारण जिन लोगों की मौत होती है, उनकी संख्या 38 प्रतिशत है। इसके अलावा दुर्घटना एवं चोट तथा बुढ़ापे की बीमारियों के कारण मरने वालों की संख्या 10-10 प्रतिशत है।

कालाजार का सच

आज भी हर साल कालाजार के 6 लाख नये मामलों में से एक लाख मामले भारत में ही होते हैं। दुनिया की 350 मिलियन आबादी कालाजार की आशंका में है। इनमें से 1.2 मिलियन (12 लाख) मामले भारत के हैं। गंगा और ब्रह्मपुत्र नदी के आसपास के सभी जिले इसकी चपेट में हैं। इस रोग की एक खास बात यह है कि बिहार, बंगाल, असम, तमिलनाडु आदि प्रदेशों में सबसे गरीब व उपेक्षित कही जाने वाली जातियां सबसे ज्यादा इस रोग की चपेट में हैं। साल-दर-साल कालाजार की स्थिति बदतर होते जाने के बावजूद इस पर सरकार का बजट वर्ष 2005-06 में एड्स/एच.आई.वी. के बजट का 5 प्रतिशत भी नहीं है। जबकि एच.आई.वी. के मुकाबले कालाजार के मरीजों की संख्या कई गुना ज्यादा है।

तालिका : 1
भारत में कालाजार संक्रमण

वर्ष	बिहार		बंगाल		भारत (कुल)	
	मामले	मृत्यु	मामले	मृत्यु	मामले	मृत्यु
1986	14079	47	3718	25	17806	72
1989	30903	477	3573	20	34489	407
1991	59614	834	2030	3	61670	838
2003	13960	187	1487	7	18214	210
2006	29711	162	1843	10	39178	187
2007	37819	172	1817	9	44533	203
2009	17529	68	531	0	20478	70

(** नवम्बर तक) (स्रोत-स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय, नई दिल्ली, 2010)

उपरोक्त आंकड़े बताते हैं कि साल दर साल कालाजार के मामले बढ़ ही रहे हैं। खासकर उन इलाकों और समूहों में जहां उपेक्षा और निर्धनता ज्यादा है।

सवाल है कि कालाजार और गरीबी के अतर्संबंधों के खुलासे के बावजूद सरकार की इस रोग के उन्मूलन में ज्यादा दिलचस्पी क्यों नहीं है? अप्रैल 2006 में पटना उच्च न्यायालय ने भी बिहार सरकार की खिंचाई करते हुए निर्देश दिया था कि गरीब लोगों की बसाहट वाली बस्तियों और टोलों में सरकार कालाजार के उन्मूलन के लिये सफाई इंतजाम सुनिश्चित करे। पटना उच्च न्यायालय ने एक जनहित याचिका की सुनवाई करते हुए राजधानी से सटे फुलवारी शरीफ मुशहर टोला दलित बस्ती में फैले कालाजार और इससे मरते दलितों पर चिंता व्यक्त की थी। कालाजार से जुड़ा एक और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि कालाजार के उपचार की एलोपैथिक दवा यूरिया स्टीबमिन के आविष्कारक डॉ. उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी के अनुसंधान (1947) के बाद आज तब इस दवा के संरक्षण और विकास पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया। 1990-2000 के बीच बिहार में कालाजार की सस्ती दवा बनाने वाली कंपनी बंद हो गई और अब बाहर से दवा मंगाने के अलावा सरकार के पास और कोई चारा नहीं है।

मलेरिया की कंपकंपी

वैश्वीकरण और उदारीकरण के बाद मलेरिया की स्थिति इस रूप में भयानक हुई है कि इसके संक्रमण और बढ़ते प्रभाव की आलोचना से बचने के लिए सरकार ने नेशनल मलेरिया कंट्रोल प्रोग्राम (एनएमसीपी 1953) एवं नेशनल मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम (एनएमईपी 1958) से अपना ध्यान हटा लिया है। नतीजा हुआ कि सालाना मृत्युदर में वृद्धि

हो गई। हालांकि सरकारी आंकड़ों में मलेरिया संक्रमण के मामले कम हुए ऐसा बताया गया है लेकिन सालाना परजीवी मामले (एपीआई), सालाना फैल्सीफेरम मामले (एएफआई) में गुणात्मक रूप से वृद्धि हुई है।

विश्व बैंक का अनुमान है कि मलेरिया के वर्ष 2006 में 247 मिलियन मामले सामने आए। जिनमें 86 प्रतिशत मामले अफ्रीका क्षेत्र में थे और बाकी मामलों का 80 प्रतिशत भारत, म्यांमार, बांग्लादेश एवं पाकिस्तान में।

भारत में मलेरिया महामारी को निम्नलिखित श्रेणी में बांटा जाता है:

ट्राइबल मलेरिया - लगभग 44 मिलियन आदिवासी आबादी में से 50 प्रतिशत लोग मलेरिया की खतरनाक प्रजाति फैल्सीफेरम मलेरिया की चपेट में हैं। आश्चर्य की बात यह है कि कुल मलेरिया से होने वाली मौतों में इस आबादी का 50 प्रतिशत शामिल होता है।

ग्रामीण मलेरिया में हरियाणा, पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान एवं मध्य प्रदेश तथा ओडिशा आंध्र प्रदेश एवं तमिलनाडु के ज्यादातर मलेरिया रोगी आते हैं जबकि शहरी मलेरिया देश के 15 बड़े शहरों के साथ-साथ चार मेट्रोपोलिटन शहर के लोग इसकी चपेट में हैं। यह संख्या भी अच्छी-खासी है। कुल 42.39 मिलियन शहरी आबादी मलेरिया की चपेट में हैं।

विडंबना यह है कि मलेरिया नियंत्रण और उन्मूलन के अब तक सभी सरकारी कार्यक्रमों/अभियानों की विफलता के बाद बहुराष्ट्रीय कंपनियों (खासकर ग्लेक्सो स्मिथक्लाईन) के सुझाव पर तथाकथित मलेरियारोधी टीका (SPF 66 तथा RTS,S/AS02) का प्रचार जोर-शोर से किया जा रहा है जबकि इस महंगे टीके की घोषित प्रभाव क्षमता 50 प्रतिशत से भी कम है। हालांकि कंपनी अमरीका में इसके 70 प्रतिशत सफलता का दावा कर रही है।

जाहिर है मलेरिया उन्मूलन के बुनियादी सिद्धांतों को छोड़कर सरकार कंपनियों के दबाव में बाजारू समाधान (वैक्सीन?) पर ध्यान दे रही है। इससे न तो मलेरिया खत्म होगा न ही मलेरिया रोगियों की संख्या में कमी आएगी। हां बाज़ार और कंपनियों का मुनाफ़ा जरूर बढ़ेगा। इसके लिये मच्छर प्रजनन की संभावनाओं को खत्म करना आज सरकार की प्राथमिकता में नहीं है। बड़े बांधा, बड़े निर्माण, बढ़ता शहरीकरण, शहरीकण से बढ़ता स्लम आदि मच्छरों के प्रजनन की मुख्य वजह हैं।

तालिका : 2
भारत में मलेरिया की स्थिति

वर्ष	मामले कुल	(मिलियन में) पी.एफ	मृत्यु
1996	3.04	1.18	1010
2000	2.03	1.05	932
2003	1.64	0.70	943
2005	1.82	0.81	963
2006	1.79	0.75	1707
2007	1.51	0.74	1310
2008	1.52	0.76	924

(पी.एफ - प्लाजमोडियम फेल्सिफरम)

स्रोत - भारत सरकार स्वास्थ्य मंत्रालय वार्षिक रिपोर्ट 2008-09

क्यों नहीं खत्म हो रहा मलेरिया ?

मुंबई देश की आर्थिक राजधानी है। जाहिर है विकास के नाम पर देश मुंबई पर बहुत ज्यादा खर्च करता है। ताज़ा ख़बर यह है कि इस अति आधुनिक शहर में जुलाई के अंत तक मलेरिया जैसे सामान्य रोग से कोई 31 लोगों की मौत हो चुकी है और 17,138 लोग सरकारी तौर पर मलेरिया की चपेट में हैं। इसी महानगर में वर्ष 2009 में मलेरिया से 198 लोगों की मौत हो गई थी। पिछले वर्ष की तुलना में इस वर्ष अभी तक मलेरिया का प्रभाव 2.3 प्रतिशत ज्यादा है। मलेरिया के रोज बढ़ते और जटिल होते मामले बार-बार हमें भविष्य के भयावह ख़तरे का अहसास करा रहे हैं। हालात यह है कि इस साधारण और नियंत्रित किये जा सकने वाले (प्लाजमोडियम) परजीवी से होने वाला बुखार जानलेवा तो है ही अब लाइलाज होने की कगार पर है। लेकिन समुदाय और सरकार अभी भी इसे गंभीरता से नहीं ले रहे हैं।

18वीं शताब्दी में फ्रांस के एक सैन्य चिकित्सक 'लेरेरान' ने इस ख़तरनाक मलेरिया परजीवी को उत्तरी अमरीका के अल्जीरिया प्रांत में ढूंढा था। तब से यह परजीवी रोकथाम के सभी कथित प्रयासों को ठेंगा दिखाता दिन प्रतिदिन मच्छर से शेर होता जा रहा है। जैव वैज्ञानिक नोराल्ड रोस ने 1897 में जब यह पता लगाया कि एनोफेलिज नामक मच्छर मलेरिया परजीवी को फैलाने के लिए जिम्मेदार है तब से मलेरिया बुखार चर्चा में है। इन मच्छरों को मारने या नियंत्रित करने के लिये स्वीस वैज्ञानिक पॉल मूलर द्वारा आविष्कृत डीडीटी अब प्रभावहीन है जबकि मूलर को उनके इस खोज के लिये नोबेल पुरस्कार तक मिल चुका है। संक्षेप में कहें तो मलेरिया उन्मूलन के अब तक के सभी कथित वैज्ञानिक उपाय बेकार सिद्ध हुए हैं। बल्कि अब और ख़तरनाक व बेकाबू हो गया है। हालांकि विश्व स्वास्थ्य संगठन इसे सामान्य और नियंत्रित किया जा सकने वाला रोग मानता है।

सवाल है कि आधुनिकतम शोध, विकास और तमाम तकनीकी, गैर तकनीकी विकास के बावजूद मलेरिया नियंत्रित या खत्म क्यों नहीं हो पा रहा है? इस प्रश्न का जवाब न तो स्वास्थ्य मंत्रालय के पास है न ही किसी स्वयं सेवी संस्था के पास। आइये ! संक्षेप में यह जानने का प्रयास करते हैं कि मलेरिया नियंत्रण के लिये सरकार ने अब तक क्या-क्या कदम उठाए हैं।

भारत में सबसे पहले अप्रैल 1953 में राष्ट्रीय मलेरिया नियंत्रण कार्यक्रम (एनएमसीपी) शुरू किया गया। बताते है कि 5 वर्ष की अवधि में इस कार्यक्रम ने मलेरिया का संक्रमण 75 मिलियन से घटाकर 2 मिलियन पर ला दिया। इससे उत्साहित होकर विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 1955 में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम (एनएमईपी) चलाने की योजना बनाई। 1958 मे मलेरिया के मामले 50,000 से बढ़कर 6. 4 मिलियन हो गए। इतना ही नहीं अब मलेरिया के ऐसे मामले सामने आ गए हैं। जिसमें मलेरियारोधी दवाएं भी प्रभावहीन हो रही हैं। इसे प्रशासनिक व तकनीकी विफलता बता कर स्वास्थ्य संस्थाओं, सरकार और डब्ल्यूएचओ ने पल्ला झाड़ लिया।

केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय ने पुनः 1977 में मलेरिया नियंत्रण के लिये संशोधित प्लान ऑफ ऑपरेशन (एमपीओ) शुरू किया। थोड़े-बहुत नियंत्रण के बाद इससे भी कोई खास फायदा नहीं हुआ, उलटे मलेरियारोधी दवा 'क्लोरोक्वीन' के हानिकारक प्रभाव ज्यादा देने लगे। जी मिचलाना, उल्टी, आंखों में धुंधलापन, सरदर्द जैसे साइड इफैक्ट के बाद लोग क्लोरोक्वीन से बचने लगे। मलेरिया से बचाव के लिये रोग प्रतिरोधी दवा को पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों को देने की योजना को भी कई कारणों से नहीं चलाया जा सका। उधर मलेरिया के मच्छरों को खत्म करने की बात तो दूर उसे नियंत्रित करने की योजना व उपाय भी धरे के धरे रह गए। डीडीटी व अन्य मच्छररोधी दवाओं के छिड़काव से भी मच्छरों को रोकना संभव नहीं हुआ तो इसे प्रतिबंधित करना पड़ा। स्थिति अब ऐसी हो गई है कि न तो मच्छर नियंत्रित हो पा रहे हैं और न मलेरिया की दवा कारगर प्रभाव दे पा रही है। मसलन वैज्ञानिक शोध, विकास और कथित आर्थिक संपन्नता की ओर बढ़ते समाज और देश के लिये मलेरिया एक जानलेवा पहेली बनी हुई है।

मलेरिया के उन्मूलन में केवल मच्छरों को मारने या नियंत्रित करने तथा बुखार की दवा को आजमाने के परिणाम दुनिया ने देख लिये हैं, लेकिन मलेरिया उन्मुलन से जुड़े दूसरे सामाजिक, सांस्कृतिक राजनीतिक व आर्थिक पहलुओं पर सरकारों व योजनाकारों ने कभी गौर करना भी उचित नहीं समझा। अभी भी वैज्ञानिक मच्छरों के जीन परिवर्तन जैसे उपायों में ही सर खपा रहे हैं। अमरीका के नेशनल इंस्टीट्यूट आफॅ एलर्जी एंड इन्फेक्सियस डिजिजेस के लुई मिलर कहते हैं कि मच्छरों को मारने से मलेरिया खत्म नहीं होगा क्योंकि सभी मच्छर मलेरिया नहीं फैलाते। आण्विक जीव वैज्ञानिक भी नये ढंग की दवाएं ढूंढ रहे हैं। कहा जा रहा है कि परजीवी को लाल रक्त कोशिकाओं से हीमोग्लोबिन सोखने से रोक कर यदि भूखा मार दिया जाए तो बात बन सकती है लेकिन इंसानी दिमाग से भी तेज इन परजीवियों का दिमाग है जो उसे पलटकर रख देता है। बहरहाल, मलेरिया परजीवी के खिलाफ़ विगत एक शताब्दी से जारी मुहिम ढाक के तीन पात ही सिद्ध हुए हैं। परजीवी अपने अनुवांशिक संरचना में इतनी तेजी से बदलाव कर रहा है कि धीमे शोध का कोई फायदा नहीं मिल रहा।

वैज्ञानिक सोच और कार्य पर आधुनिकता तथा बाजार का इतना प्रभाव है देशी व वैकल्पिक कहें जाने वाले ज्ञान को महत्व ही नहीं दिया जाता। होमियोपैथी के आविष्कारक डॉ. हैनिमैन एलोपैथी के बड़े चिकित्सक और जैव वैज्ञानिक थे। मलेरिया बुखार पर ही 'सिनकोना' नामक दवा के प्रयोग के बाद उन्होंने होमियोपैथी चिकित्सा विज्ञान का सृजन किया। दुनिया जानती है कि मलेरिया की एलोपैथिक दवा क्लोरोक्वीन तो प्रभावहीन हो गई है लेकिन होमियोपैथिक दवा 'सिन्कोना ऑफसिनेलिस' आज सवा दो सौ वर्ष बाद भी उतनी ही प्रभावी है। आयुर्वेद व होमियोपैथी के रोग उपचारक व नियंत्रण क्षमता को कभी सरकार ने उतना अहमियत नहीं दिया जितना कि एलोपैथी को देती है। जरूरत इस बात की है कि देसी व वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों की वैज्ञानिकता को परख कर बिना किसी पूर्वाग्रह के उसे प्रचारित किया जाना चाहिये।

वातावरण का तापक्रम बढ़ रहा है। दुनिया जानती है कि बढ़ता शहरीकरण, उद्योग-धंधे, मोटर गाड़ियों का बढ़ता उपयोग, कटते जंगल, शहरों में बढ़ती आबादी, बढ़ती विलासिता आदि वैश्विक गर्मी बढ़ा रहे हैं। मच्छड़ों के फैलने के लिये ये ही तापक्रम जरूरी हैं अतः इस तथाकथित आधुनिकता के बढ़ते रहने से मच्छरों को नियंत्रित करवाना संभव नहीं होगा। मच्छरों से बचाव के कथित आधुनिक उपाय जैसे क्रीम, आलआउट, धुंआबत्ती स्प्रे आदि बेकार हैं। पारंपरिक तरीके जैसे - मच्छरदानी, सरसों के तेल का शरीर पर प्रयोग, नीम की खली आदि से मच्छरों को नियंत्रित किया जा सकता है। जिसे रोके बगैर मच्छरों को रोकना संभव नहीं है। ऐसे में मलेरिया के नाम पर संसाधनों की लूट और क्षेत्रीय राजनीति तो की जा सकती है लेकिन इस जानलेवा बुखार को रोका नहीं जा सकता। अभी भी वक्त है योजनाओं में नीतिगत बदलाव लाकर आबादी को पूरे देश में फैला दिया जाए। ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती दी जाए। बड़े बांध और अंधाधुन शहरीकरण को रोका जाए। देशी व पारंपरिक वैज्ञानिक चिकित्सा विधियों की अमूल्य विरासत को बढ़ावा दिया जाए तो मलेरिया व अन्य जानलेवा रोगों को काफी हद तक सीमित संसाधनों में भी खत्म किया जा सकता है।

भयानक होता ट्यूबरकुलोसिस (टीबी)

वैश्वीकरण के दौर में टीबी. का सच यह है कि दवाओं की उन्नत खोज और सरकार की तथाकथित सक्रियता के बावजूद टीबी के मामले और भयावह हुए हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की मानें तो वर्ष 2006 तक टीबी के 902 मिलियन (139/100,000) नये मामले सामने आए, जिनमें 7.7 प्रतिशत मामले (789,000) एचआईवी संक्रमित लोगों में हैं। इनमें से 1.7 मिलियन की तो मौत हो गई जिसमें 231,000 मामले एचआईवी संक्रमित लोगों के हैं।

टीबी के मामले जटिल होने के पीछे लोगों में पोषण की कमी, आर्थिक गरीबी जैसे कारण प्रमुख हैं जिन्हें सरकार नज़रअंदाज करती रहती है। वैश्वीकरण के बाद भारत में अधिकांश लोगों की दैनिक आमदनी में आई कमी का उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर हुआ है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अपने एक रिपोर्ट में गरीबी को अंतर्राष्ट्रीय वर्गीकरण में एक रोग माना है। इसे जेड 59.5 का नाम दिया गया है। रिपोर्ट में कहा गया है कि गरीबी के बढ़ने से लोगों में बीमारियों के बढ़ने के साथ साथ उसके लाइलाज होने और अंततः मौत की स्थिति तेज़ी से बढ़ रही है। जाहिर है अमीरी और गरीबी के बीच

तालिका : 3
भारत में टीबी की स्थिति (2008)

जनसंख्या	1151 मिलियन
वैश्विक क्रम	1
मामले (सभी मामले/100,000 आबादी प्रतिवर्ष)	170
(नये प्रतिवर्ष)+वीई मामले/100,000 आबादी संक्रमण की व्यापकता (प्रति 100,000 आबादी)	185
टी.बी. मृत्युदर प्रति 100,000 आबादी प्रतिवर्ष	24
एचआईवी. के साथ टी.बी. के नये मामले	5
मल्टीड्रग रेरिसस्टेन्स के नये मामले	2
मल्ट्रीड्रग रेरिसन्स्टेन्स के पहले उपचारित मामले	12.17

स्रोत-डब्ल्यूएचओ रिपोर्ट 2010

बढ़ती इकाई ने आम लोगों में जनस्वास्थ्य रक्षा के मुद्दे को गौण बना दिया है। अस्पतालों के निजीकरण से स्थिति और बदतर हुई है।

उपरोक्त आंकड़ों से यह बात साफ होती है कि जिस बीमारी के कारण सर्वाधिक लोगों की मौत होती है, उस पर ज्यादा ध्यान देने की ज़रूरत है। इन बीमारियों में महंगी दवाएं लंबे समय तक लेनी पड़ती है। दूसरी तरह की जो बीमारियां हैं, उनके इलाज के लिये नई-नई दवाइयों का इस्तेमाल करना पड़ता है। ये भी महंगी तथा उच्चस्तरीय इलाज की मांग करती है। बुढ़ापे में तो स्वस्थ रहने के लिये दवाओं पर निर्भरता और बढ़ जाती है। दुर्घटना एवं चोट की स्थिति में तुरंत और कई प्रकार के इलाज की आवश्यकता होती है।

आज भी प्रत्येक साल कालाजार के 6 लाख नये मामलों में से एक लाख मामले भारत में ही होते हैं। दुनिया की 350 मिलियन आबादी कालाजार की आशंका में है। इनमें से 1.2 मिलियन (12 लाख) मामले भारत के हैं। इस रोग की एक खास बात यह है कि बिहार, बंगाल, असम, तमिलनाडु आदि प्रदेशों में सबसे गरीब व उपेक्षित कही जाने वाली जातियां सबसे ज्यादा इस रोग की चपेट में हैं। साल दर साल कालाजार की स्थिति बदतर होते जाने के बावजूद इस पर सरकार का विशेष ध्यान नहीं है। जबकि एचआईवी के मुकाबले कालाजार के मरीजों की संख्या बिहार में कई गुना ज्यादा है। वैश्वीकरण और उदारीकरण के बाद मलेरिया की स्थिति इस रूप में भयानक हुई है कि इसके संक्रमण और बढ़ते प्रभाव की आलोचना से बचने के लिए सरकार ने नेशनल मलेरिया कंट्रोल प्रोग्राम (एनएमसीपी 1953) एवं नेशनल मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम (एनएमईपी 1958) से अपना ध्यान हटा लिया है। नतीजा हुआ कि सालाना मृत्युदर में वृद्धि हो गई। हालांकि सरकारी आंकड़ों में मलेरिया संक्रमण के मामले कम हुए ऐसा बताया गया है लेकिन सालाना परजीवी मामले (एपीआई), सालाना फैल्सीफेरम मामले (एएफआई) में गुणात्मक रूप से वृद्धि हुई है। बिहार में विकास के साथ-साथ मस्तिष्क ज्वर से मरने वाले बच्चों की खबरें भी सुर्खियों में थी। जापानी बुखार एवं एक्यूट इन्सेफ्लाइटिस सिन्ड्रोम (एईएस) नाम से जाना जाने वाला यह बुखार सैंकड़ों जानें ले चुका है। गैर-सरकारी आंकड़ों में यह संख्या 2012 में 600 से ज्यादा है। विगत वर्ष बिहार के 10 जिलों में इस जानलेवा बुखार की गिरफ्त में डेढ़ हजार से ज्यादा बच्चे थे।

हमारे देश में स्त्री-पुरुष अनुपात भी अन्य देशों से कम हैं। जनगणना के आंकड़ों के अनुसार भारत में स्त्री-पुरुष अनुपात 933:1,000 है, जबकि रूस में यह 1140:1,000 है। बिहार में स्त्री-पुरुष अनुपात 916:1,000 है। यहां औरतों की कमजोर सेहत की वजहों में कुपोषण महत्वपूर्ण है। आंकड़े बताते हैं कि गर्भ में लड़का होने पर माताएं 90 प्रतिशत पोषण प्राप्त करती हैं, जबकि लड़कियों के मामले में ऐसी माताओं का प्रतिशत सिर्फ 72 है। हमारे ग्रामीण लड़कों की तुलना में 52 प्रतिशत ग्रामीण लड़कियां कुपोषित हैं।

हमें ज़रूरत है कि सार्वजनिक क्षेत्र की दवा कंपनियों में सरकार समुचित निवेश कर उन्हें स्वास्थ्य क्षेत्र के पंचरत्नों में तब्दील करें. इसके लिये लगने वाली धनराशि के प्रबंध को लेकर हम पहले ही बता चुके हैं। इन कंपनियों के माध्यम से सरकार देशी अनुसंधान को भी बढ़ावा देगी। बिकने वाली सभी दवाओं पर कड़े मूल्य नियंत्रण को लागू किया जाए तथा निजी क्षेत्र को एक सीमा तक ही मुनाफ़ा कमाने की इजाजत दी जाए। इन कंपनियों द्वारा विक्रय बढ़ाने के लिये किये जाने वाले जुगतों पर भी नियंत्रण (निगरानी नहीं) रखा जाए, जिससे भ्रष्टाचार को खत्म किया जा सके।

2011 के आंकड़ों के अनुसार भारत में कुल 7,121,21 आयुष चिकित्सक हैं। इनमें आयुर्वेद के 4,29,246, यूनानी चिकित्सा के 49,431, सिद्धा के 7,568, होम्योपैथी के 2,24,269 और प्राकृतिक चिकित्सा के 1,557 चिकित्सक शामिल हैं। आज यह हमारी ज़रूरत है कि ऐलोपैथी के अलावा आयुष चिकित्सा को भी गंभीरता से लिया जाए और इनके विकास के लिये भी संसाधन उपलब्ध कराए जाएं प्रदेश के सभी 36 जिलों में एक-एक आयुष चिकित्सालय की स्थापना सुनिश्चित करने की बात भी हम सोच सकते हैं। जनता को इस बात के लिये उपयुक्त अवसर प्रदान किया जाए कि वह अपनी पसंद की चिकित्सा पद्धति का चुनाव कर सकें। सुझाव के तौर पर कुछ बिन्दु निम्नलिखित हैं:

- जनस्वास्थ्य शिक्षण को माध्यमिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए।
- जनस्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य के बुनियादी ढांचों को प्राथमिक स्तर पर मजबूत, योग्य एवं आत्मनिर्भर बनाने की योजना बने।
- स्वास्थ्य एवं शिक्षा जैसे अति महत्वपूर्ण क्षेत्र से व्यावसायिकता एवं बाज़ार को एकदम दूर रखा जाए।
- देश में प्रचलित भारतीय एवं सामुदायिक स्वास्थ्य पद्धतियां आयुर्वेद, यूनानी, होमियोपैथी आदि को वैज्ञानिक एवं अकादमिक तौर पर न केवल और विकसित किया जाए बल्कि इन्हें स्वास्थ्य व उपचार की प्रक्रिया के मुख्यधारा में प्रमुखता से शामिल किया जाए।
- देश में स्वास्थ्य को आवश्यक एवं आकस्मिक सेवा के रूप में घोषित किया जाए तथा जीवन रक्षा को निःशुल्क एवं व्यक्ति का सर्वप्रथम अधिकार घोषित किया जाए। ❑

(लेखिका जनस्वास्थ्य वैज्ञानिक एवं होमियोपैथिक चिकित्सक हैं। विगत तीन दशक से जनस्वास्थ्य व अन्य सामाजिक मुद्दों पर सक्रिय रूप से कार्य कर रही हैं। ई मेल : ysamvad@gmail.com)

सतत प्रगति की रणनीतियां

• अरुण मायरा

विश्व भर में और हमारे अपने देश भारत में संस्थाओं में सुधार की अति आवश्यकता है। विश्व गहरे संकट के दौर से गुज़र रहा है। सर्वत्र प्रगति के वर्तमान प्रतिभावों की दीर्घजीविता के बारे में चिंता व्यक्त की जा रही है। सरकार और व्यापार की संस्थाओं में विश्वास कम होता जा रहा है। वैश्विक संस्थागत संकट क्यों पैदा हुआ है, इसे प्रस्तुत आलेख में स्पष्ट करने का प्रयास किया जाएगा। इस बारे में भी कुछ विचार प्रस्तुत किए जाएगें कि किस प्रकार हम उन संस्थाओं को आकार दे सकते हैं जिनकी आज हमें आवश्यकता है।

सर्वप्रथम उन तरीक़ों का वर्णन किया जाएगा जिनमें संस्थागत सुधार भारत की राजनीतिक प्रक्रिया का केंद्र बिंदु बन चुका है। इसका केंद्र बनना वास्तव में एक अच्छी खबर है। वास्तव में, बारहवीं पंचवर्षीय योजना को तैयार करने से पूर्व योजना आयोग ने भारत के भावी परिदृश्य का जो खाका तैयार किया था, उसमें यह कहा गया था कि संस्थाओं के 'पहियों में रेत' आ जाने से भारत की आर्थिक विकास की दर तेज़ी से गिरती जा रही है। इन परिदृश्यों में इस बात का विश्लेषण किया गया था कि सरकार, राजनीतिक दलों और बड़े व्यापार घरानों की संस्थाओं में भारत के नागरिक का कम होता विश्वास, नीतिगत अनिर्णय को जन्म दे रहा था। जब तक यह विश्वास बहाल नहीं होता, प्रगति का चक्र तेज़ी से आगे नहीं बढ़ सकेगा।

वर्ष 2014 का उदय राजनीतिक दलों के लिये एक नये एजेंडे के साथ हुआ है। अब से कुछ महीनो बाद आम चुनाव में उन्हें जनता के समर्थन के लिए मैदान में उतरना है। एजेंडा है: संस्थाओं को सुधारो। संस्थाओं को जनता की सेवा करनी होगी, न कि सत्तासीन लोगों की जागीर के रूप में देखी जानी चाहिए। सरकारी संस्थाओं को जनता के धन को न केवल खर्च करना चाहिए बल्कि उन्हें लोगों की आवश्यकतानुसार नतीजे भी देने चाहिए। सार्वजनिक संस्थाओं से अच्छी सेवा पाना लोगों का अधिकार है, यह कोई एहसान नहीं कि जिसके लिए उन्हें रिश्वत देनी पड़े।

सतत संस्थाओं का सुधार

जॉन. एफ. केनेडी का अमरीका से 1961 में चांद पर मानव भेजने के आह्वान ने राष्ट्र की कल्पनाशक्ति को झकझोर दिया था। उस समय असंभव लगने वाला यह उद्देश्य (लक्ष्य) एक दशक के भीतर ही हासिल कर लिया गया था। यह सब संभव हो सका था वाहनों (यानों) के विकास से जो अंतरिक्ष के विरल पर्यावरण में विचरण कर सकते थे। केनेडी ने जब अपना भाषण दिया था, जेट विमान सागरों के आर-पार उड़ाने भर रहे थे। परंतु अंतरिक्ष की परिस्थितियां पृथ्वी के पर्यावरण की स्थितियों से काफी भिन्न होती हैं। इसलिए चंद्रमा के अभियान के लिए, सर्वथा नये प्रकार के यानों के विकास की आवश्यकता थी जो उन परिस्थितियों में काम कर सकें।

मानव ने राज्य, व्यापार, लोकतंत्र और न्याय की संस्थाओं का विकास विभिन्न समय में समाजों की अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया है। संस्थाएं वे साधन हैं जिनसे समाज अपनी आकांक्षाओं को पूरा करते हैं। निश्चय ही मानव अपने मामलों के प्रबंधन के लिए सुविचारित संस्थाओं के विकास के कारण ही पशुओं से भिन्न माना जाता है। पशु, पक्षी और कीट समुदायों के अपने सहज-स्वाभाविक संस्थागत नियम होते हैं, जो उनके व्यवहार को नियन्त्रित करते हैं। परंतु जहां तक हम जानते हैं, वे इंसानों की तरह, जानबूझ कर इन संस्थागत नियमों में पविर्तन और सुधार नहीं करते।

वे परिस्थितियां, जिनमें मानवमात्र की सामाजिक और आर्थिक संस्थाओं को काम करना चाहिये, पिछले दो दशकों में नाटकीय परिवर्तन आया है। जिस प्रकार पृथ्वी के पर्यावरण में उड़ान भरने वाला विमान खुले अंतरिक्ष में सुरक्षित रूप से उड़ान नहीं भर सकता, ठीक उसी प्रकार हमें अपनी अनेक संस्थाओं को नये सिरे से तैयार करना होगा।

अप्रत्याशित तूफान

21वीं सदी के शुरुआत से ही पूरे विश्व में चार जबर्दस्त तूफान चल रहे हैं और वे आपस में मिलकर एक ऐसे अप्रत्याशित तूफान को जन्म दे रहे हैं जो उन व्यापारिक और सरकारी संस्थाओं को चुनौती दे रहा है जिनका गठन इन परिस्थितियों के लिए नहीं हुआ है।

पहली तेज आंधी है मुक्त बाज़ार और पूंजीवाद का विचार। यह कोई नया विचार नहीं है। इसके जनक स्मिथ माने जाते हैं और करीब दो सौ वर्षों से यह प्रचलित है।

सर्वत्र मुक्त बाज़ारों के विस्तार और 1990 के दशक में भारत में भी अर्थव्यवस्था को खोले जाने के बाद से, अनेक देशों की अर्थव्यवस्था में तेज़ी से वृद्धी हो रही है। सबसे उल्लेखनीय है अरबो की जनसंख्या वाले भारत और चीन के दो देशों का विकास। दोनों अर्थव्यवस्थाओं (देशों) की वृद्धि दर ने लाखों लोगों को भूख से छुटकारा दिलाने में मदद की है।

मुक्त बाज़ारों में आर्थिक वृद्धि कार्य-कारण संबंध के संबंधी सिद्धांत का अनुसरण करती है। बाज़ार को मुक्त किए जाने पर जिनके पास वित्तीय, शैक्षिक अथवा राजनीतिक शक्ति से नजदीकी जैसी परिसंपत्तियां हैं वे उपलब्ध अवसरों का लाभ उठा सकते हैं। उनकी आय और संपत्ति उन लोगों की तुलना में ज्यादा तेज़ी से बढ़ती है, जिनके पास ये परिसंपत्तियां नहीं हैं।

इस प्रकार मुक्त बाजारों में लोगों की आय और संपत्ति के अंतर में वृद्धि भी देखी जाती है। अतएव, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि चीन, रूस, भारत और मुक्त बाज़ार तथा पूंजीवाद अपनाने वाले अन्य देशों में 'जिनी' गुणांक बढ़ रहा है। समय आने पर, आर्थिक विकास का लाभ उन गरीबों तक भी पहुंचने लगेंगे। जैसे-जैसे वे शिक्षा, वित्त और रोज़गार के अवसरों का लाभ उठाने लगेंगे, उनकी निर्धनता भी दूर होती जाएगी।

इस प्रकार के प्रादर्श में धीरज की आवश्यकता होती है। और इस प्रकार के प्रादर्श में, पुनर्वितरण के लिए विवश करना 'समाजवादी' कदम कहलाएगा और यह अनुचित होगा। जबकि करों में छूट देकर अमीरों को अपनी संपदा बढ़ाने में मदद करना ताकि अर्थव्यवस्था में वृद्धि हो सके, पूंजीवादी कदम होगा और वह स्वीकार्य होगा।

समूचे विश्व में जो दूसरी आंधी चल रही है वह समस्त व्यक्तियों चाहे वह श्वेत हो या अश्वेत, पुरुष हो या स्त्री, संपन्न हो या निर्धन सभी के अधिकारों की बात है। यह पूंजीवादी की तुलना में अधिक नया बल है। सभी के अधिकारों के सम्मान का यह बल लोकतंत्र के विचार के साथ खूब मेल खाता है। पिछले दो दशकों में इसे पर्याप्त मज़बूती मिली है। सोवियत संघ के सर्वसत्तावादी सरकारों के पतन और अरब जगत में हाल में हुए क्रांतिकारी बदलावों से यह विचार और भी सुदृढ़ हुआ है।

दूसरी तेज आंधी में जो चीज गहराई में छिपी हुई है वह न्याय, समानता और निष्पक्षता है। अर्थशास्त्रियों की नज़र में बढ़ती हुई अर्थव्यवस्थाओं में असमानता का होना अनुचित नहीं है। वे कह सकते हैं कि यह तो खेल का हिस्सा है। परंतु अन्य लोग पूछ सकते हैं कि क्या यह मानवीय दृष्टि से उचित है।

तीसरी आंधी वह आवाज़ है जो जोर-शोर से धरती के पर्यावरण की बात करती है। पर्यावरण की स्थिति को लेकर सभी जगह चिंता व्यक्त की जा रही है। हम सभी जानते हैं कि आर्थिक विकास के जिस प्रतिमान ने संपन्न देशों को समृद्धि प्रदान की है वह दीर्घजीवी नहीं है, उसे सदैव बचाये नहीं रखा जा सकता। मानव जाति का वैश्विक पदचिन्ह्र जो धरती के संसाधनों पर पड़ने वाली मानवीय गतिविधियों के दबाव के रूप में मापा जा सकता है। 1960 में धरती की क्षमता का 60 प्रतिशत था जो अब धरती की क्षमता के 130 प्रतिशत तक पहुंच गया है। हम अब राजस्व खाते से जीवन नहीं पा रहे हैं। हम प्रकृति पूंजी को खाए जा रहे हैं।

चौथी आंधी, जो हाल की उपज है, वह सूचना का संभावित बल है। केवल पिछले बीस वर्षों में दूरसंचार और इंटरनेट ने लोगों के बीच संपर्क कायम करने के क्षेत्र में ऐसी अभूतपूर्व वृद्धि हुई है जिसकी विकास मानव इतिहास में मिलनी दुर्लभ है। यह आंधी छठी श्रेणी का तूफान बन चुका है।

अब आप सेलफोन (मोबाइल फोन) पर घर बैठे दुनिया के किसी भी कोने में अपने मित्र, संबंधी या अन्य किसी से तत्काल बात कर सकते हैं। बीस वर्ष पहले आप ऐसा नहीं कर सकते थे, अमरीका में भी ऐसा संभव नहीं था। अब अन्य देशों सहित समूचे भारत में गरीबों के हाथों में भी सेलफोन मौजूद हैं। अब आप इंटरनेट पर गूगल के माध्यम से दुनिया जहान की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। दस वर्ष पहले ऐसा करना संभव नहीं था।

पिछले दस वर्षों में ही इन चार आंधियों के एकाकार होने से एक अभूतपूर्व आंधी का निर्माण हुआ है। सूचनाओं के प्रवाह के इस दौर में, रोज नई-नई आवाज़ें सुनाई पड़ रहीं हैं। इस तूफान में, विश्व की प्रगति को लेकर दो चिंताए अधिक तेज़ी से मुखर हो रही हैं।

एक है - आर्थिक विकास का हमारा प्रतिमान (ढांचा) स्थायी नहीं हो सकता। दूसरा है - आर्थिक विकास का हमारा प्रतिमान उचित नहीं है।

ये चिंताए पूंजीवाद सरकार और लोकतंत्र की संस्थाओं में सुधार के लिए दबाव बना रही है ताकि आर्थिक विकास और अधिक टिकाऊ और अधिक समावेशी तथा और अधिक न्याय संगत हो सके।

यहां मैं यह कहने का दुस्साहस कर रहा हूं कि सर्वव्यापी संचार के झंझावत से प्रभावित इस तूफान के कारण पूंजीवादी संस्थाएं इस सिद्धांत पर काम करती हैं कि एक डॉलर एक वोट के बराबर है। अत: जिन्होंने उद्यमों में अधिक डॉलर निवेश किए हैं, उन्हें उद्यम के संचालन में अधिक वरीयता मिलनी चाहिए। इसके दूसरी ओर लोकतंत्र कहता है, अमीर या गरीब प्रत्येक व्यक्ति का समान रूप से एक ही वोट होता है। भिन्न-भिन्न सिद्धांतों पर काम करने वाली प्रणालियां जब आपस में जुड़ती हैं तो उनसे बेसुरी ध्वनी निकलती है। यह ठीक वैसा ही है जैसा डी.सी. विद्युत पर काम करने वाले किसी उपकरण को ए.सी. घाटा के सॉकेट में लगा दिया जाए। कोई न कोई वस्तु उड़ जाएगी।

चारों बलों का तूफान भारत में चक्कर लगा रहा है। एक अरब बीस करोड़ की जनसंख्या वाले देश, भारत की जनसंख्या डेढ़ अरब हो जाने की आशंका जतायी जा रही है। पर्यावरण की दृष्टि से सबसे अधिक दबाव भारत में ही है। साफ पानी, भूमि, हरीतिमा की उपलब्ध मात्रा बढ़ती जनसख्या और बढ़ती अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को पूरा करने में असहजता अनुभव कर रही है।

1990 के दशक में 'शुरू हुए आर्थिक सुधारों के साथ ही भारत, ठीक उसी समय वैश्विक व्यापार एवं वित्त प्रणाली से जुड़ा, जबकि सोवियत संघ का विघटन हो रहा था। मुक्त बाजार और पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं के विचारों ने सैद्धांतिक विजय का दावा करना शुरू कर दिया था। पिछली शताब्दी के मध्य में औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्रता के बाद से ही भारत के राजनीतिक विमर्श और संविधान में लोकतंत्र और मानवाधिकारों की धारणा जड़ पकड़ने लगी थी। भारत में 35 लाख स्वयंसेवी संगठन हैं। देश के शोर मचाने वाली मुक्त मीडिया का मोबाइल फोन और इंटरनेट जनित सोशल मीडिया से और भी बल मिला है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में पिछले दो वर्षों में तेज़ी से गिरावट आई है। मूल कारण नीतिगत अनिर्णय की स्थिति है। यह गतिरोध सरकारी और बड़े उद्योगों की संस्थाओं में नागरिकों के अविश्वास और उनके आपसी टकराव के कारण पैदा हुआ है। भारत में आज जो स्थिति दिखाई दे रही है। यह लोकतंत्र की गड़गड़ाहट है। तीखे ढलान वाली पहाड़ियों से उतरते समय निचले गियर में चलने वाली कार की जो स्थिति होती है, वही स्थिति आज देश की है। भारतीयों का ध्यान देश की संस्थाओं की दशा की ओर चला गया है। अब 2014 में होने वाले आम चुनाव की एजेंडा है-वह कौन है जिस

पर लोग संस्थाओं की स्वच्छता के लिए भरोसा कर सकते हैं और कौन अर्थव्यवस्था को तेज गति से बढ़ा सकता है?

विमान में यात्रा करते हुए उसका पुनर्रुपांकन करना।

संस्थाओं में सुधार लाना कोई सरल कार्य नहीं है। यदि संस्थाएं वे वाहन है जिनमें हम यात्रा कर रहें हैं तो हमें विमानों का पुनर्व्याख्यान उनमें उड़ते हुए ही करना होगा।

नोबेल पुरस्कार से सम्मानित विद्वान डगलस सी नार्थ जैसा कहते हैं कि संस्थाएं केवल विभिन्न श्रेणियों वाले कर्मचारियों और बजट वाले संगठन ही नही होते। संस्थाएं वे प्रक्रियाएं भी होती हैं जिनके जरिये समाज अपना कार्य निभाते हैं। संस्थाओं में वे सिद्धान्त भी निहित होते हैं जिनसे समाज अपने आय को चलाते हैं। अत: गहरे संस्थागत सुधारों के लिए हमारे मामलों के निर्देशन के लिए प्रयुक्त सिद्धांत में परिवर्तन की आवश्यकता है।

एक मूलभूत और अंतर्निहित 'प्रयुक्त सिद्धान्त' मनुष्य के प्राकृतिक जगत से संबंध में निहित होता है। विश्व का नियंता बनने और इसे अपनी पंसद के अनुसार ढालने की मनुष्य की इच्छा, उसे इस प्रणाली से बाहर कर देती है, जिसका वह पुनर्रुपांकन कर उस पर नियंत्रण करना चाहता है। ठीक उसी प्रकार जैसे अपनी मशीन के बाहर बैठा कोई इंजीनियर उससे छेड़छाड़ कर रहा हो जबकि यथार्थ में मनुष्य प्रणाली का एक घटक मात्र है जो इसमें रचा हुआ है और इसलिए ये प्रणाली के अन्तर्गत उसकी करगुजारियां प्रतिक्रियाओं को जन्म देती है। जो मनुष्य को प्रभावित करती हैं।

अभिकर्ता और प्रणाली के इन दो भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से संबंधित हैं। विज्ञान के दो मूलभूत नियम। प्रथम है- उष्मा गति की का द्वितीय नियम, जिसे प्रत्येक इंजीनियर को अवश्य जानना चाहिए। यह कहता है कि किसी जटिल प्रणाली में एन्ट्रॉपी-अथवा निरर्थक ऊर्जा में समय के साथ अवश्य ही वृद्धि होनी चाहिये। अतएव, उस जटिल मशीन की क्षमता समय के साथ कम होती जाएगी। दूसरा नियम- विकास मूलक जीवविज्ञान-कहता है कि जटिल प्रणालीयों की क्षमताएं समय के साथ-साथ विकसिता होती रहेंगी और बढ़ती रहेंगी।

ये दोनों नियम जिन्हें हम अपने चारों और काम करते देखते हैं, परस्पर विरोधाभास लगते हैं। परन्तु उनमें आसानी से संगति बन जाती है। उष्मा गति की का दूसरा नियम 'एक बंद प्रणाली' में शुरू होता है और कहता है कि इस प्रकार की प्रणाली में निरर्थक ऊर्जा में वृद्धि अवश्यंभावी है। जबकि विकास का नियम एक खुली प्रणाली में प्रकृति की भांति समृद्ध विविधता में काम करता है।

मनुष्य प्राकृतिक व्यवस्था से संतुष्ट नहीं होता। उसकी महत्वाकांक्षा प्राकृतिक प्रणालियों को बदलने की है ताकि वे क्षमता से अधिक काम कर सकें। मनुष्य नदियों की धारा बदलना चाहता है। वह बीजों को नया रूप देना चाहता है। वह मानव शरीरों का प्रतिरूप तैयार करने की कगार पर खड़ा है। वह यह सब प्राकृतिक प्रणालियों की जन्मजात प्रक्रियाओं की समझ के बगैर और बिना उनके प्रति सम्मान के यूं ही किए जा रहा है। इस प्रकार वह उनसे छेड़छाड़ कर रहा है और उनकी स्वानुभूली क्षमताओं को कम कर रहा है।

संस्थाओं में एक नया वास्तुशिल्प

21वीं शताब्दी में शासन व्यवस्था के लिये एक नये वास्तुशिल्प की आवश्यकता है। इसे अंग्रेजी भाषा के अक्षर 'एल' से शुरू होने वाले चार शब्दों के इर्द गिर्द व्यवस्थित किया जाना चाहिये। पहला 'एल' है 'लोकलाइजेशन' अर्थात स्थानीयकरण प्रशासन की शक्ति और नियंत्रण दूरस्थ केन्द्रो से हटा कर स्थानीय मुहल्लों से संचालित होनी चाहिये ।

दूसरा 'एल' है 'लेटरलाइजेशन' अर्थात पार्श्वीकरण प्रबंधन में और शैक्षिक विधाओं में विशेषज्ञता के लिए फाइलों की आवश्यकता होती है । परन्तु इनसे प्रणालीगत समाधनों के विकास और कार्यान्वियन में रुकावट आती है जबकि इसकी हमें आज बड़ी आवश्यकता है। तीसरा 'एल' है 'लर्निंग' अर्थात सीखना।

प्रणाली पर और अधिक नियंत्रण हासिल के स्थान पर प्रणाली की सीखने की क्षमता में सुधार पर जोर दिया जाना चाहिये। प्रशासन का प्रतिमान इसी के अनुसार बदलना चहिये।

चौथा 'एल' है 'लिसनिंग' अर्थात सुनना। यदि हम दूसरों की सुनेंगे तो हम समूची प्रणाली को बेहतर ढंग से समझ सकेंगे।

पहले तीन एल-लोकलाइजेशन (स्थानीयकरण) लैटरलाइजेशन' (पार्श्वीकरण) और लर्निंग (सीखना) उन सिद्धांतों के समरूप है जिनसे जटिल स्व-अनुकूली प्रणालियां काम करती है।

चौथा 'एल' है 'लर्निंग' अर्थात (सीखना) इसकी मानवीय प्रणाली में विशेष रूप से आवश्यकता है।

जर्मनी के बर्टेलसमान फाउंडेशन में प्रगति को टिकाऊ रूप देने की प्रमुख देशों की रणनीतियों का एक अन्तर्राष्ट्रीय सर्वेक्षण किया है। विभिन्न स्ट्रैटेजीस फार ए ससटेनेबल फ्यूचर नाम के इस सर्वेक्षण में सफलता के पांच प्रमुख कारकों का पता लगाया है। इनमें से दो पर अवश्य प्रकाश डाला जाना चाहिए। वे चौथे एल की पुष्टि करते हैं। ये संस्थाओं के पुनर्रुपांकन की प्रक्रिया को शुरू करने वाले बिंदु है।

प्रथम है कि संपोषणीयता नीति किसी अन्य की अपेक्षा एक को अधिक महत्वपूर्ण मानने की धारणा और राजनीति तथा समाज के महत्वपूर्ण क्षेत्रों को प्रभावित करने के लिए बने निर्देशक सिद्धान्तों से जन्म लेती है। इसके लिए सबसे अच्छा तरीका प्रगति के नये उपायों पर राष्ट्रीय बहस में इस पर विशेष जोर देना है।

सफलता की दूसरी आवश्यकता है कि संपोषणीयता नीति का विकास और कार्यान्वयन सहभागिता की पद्धति से होना चाहिए। अतएव देश के लिए ज़रूरत है, सहभागिता की नई व्यवस्था का विकास करना, न केवल अधिक से अधिक लोगों को इससे जोड़ना चाहिये, बल्कि विभिन्न घटकों को एक-दूसरे की बात भी सुननी चाहिए।

आधुनिक संचार प्रौद्योगीकियां जनता की आवाज़ सुनने के साधन प्रदान करती है। लाखों लोग अपनी बात ट्वीट कर कह सकते हैं तो और बहुत से लोग सोशल मीडिया पर अपने विचार रख सकते हैं। परन्तु जैसे संचार के इन माध्यमों का प्रयोग करने वाले नीति निर्माताओं ने अनुभव किया है कि इन माध्यमों की व्यापक पहुंच और गति, लोकतांत्रिक संप्रेक्षणों को और अधिक कठिन बना सकती है।

इंटरनेट और सोशलमीडिया अनियंत्रित सूचनाओं का ऐसा ढेर लगा रहें हैं, जो हमें

समुचित शिक्षित करने के स्थान पर हम पर हावी हो सकते हैं। सोशल मीडिया के मंचों पर जो कोलाहल और शोर मचा हुआ है, उससे क्या संकेंत निकल रहें हैं और जब जानकारियां इलेक्ट्रॉनिक तरीके से प्राप्त हो रहीं हों तो कोई यह कैसे सुनिश्चित कर सकता है कि लोकतांत्रिक सिद्धान्त सही ढंग से काम कर रहे हैं? क्या कुछ प्रौद्योगिकी के जानकार लोग 'मत पेटियों कों ढेर सारे जवाबों से ठूस नहीं रहे, जबकि इतनी जानकारी न रखने वाले तमाम लोगों के विचारों पर कोई घ्यान ही नहीं दिया जा रहा?

जब व्यक्तियों और संगठनों में वैचारिक मतभेद होते हैं तो एक-दूसरे से मिलने में अनिच्छा बढ़ जाती है। क्योंकि वे दूसरे को विपत्ति मानते हैं। इससें लोगों के बीच विचार विमर्श और कठिन हो जाता है। नागरिकों के कुछ वर्ग इस बात पर सहमत हो सकते हैं जिन पर उन जैसे लोगों की एक राय हो। परन्तु नागरिक इस बात पर सहमत नहीं हो सकते कि हम सभी लोग वास्तव में क्या चाहते हैं। समाचार चैनलों सोशल मीडिया और चौबीसों घंटे प्रसारित होने वाले टीवी इंटरनेट के जरिये सूचना की बमबारी हो रही है। उसकी सर्व व्यापकता मानवीय क्षमताओं, शारीरिक और मानसिक से परे हो चुकी हैं। वे इतनी सूचनाएं परोस रहें हैं कि एक व्यक्ति एक समय में उनको शायद ही समझ सके। अतः सूचनाओं के बोझ के कारण अनेक महत्वपूर्ण बातों की ओर हम घ्यान नहीं दे पा रहे। क्या और किस बात पर घ्यान देना है, इसका चयन हमें बड़ी समझदारी से करना चाहिये। हमें उन्हीं चैनलों और इंटरनेट समुदायों तथा लोगों का अनुसरण करने को चुनना चाहिये, जिनसे हम जुड़ाव महसूस करते हों।

हमारा विकल्प निश्चय ही उन विचारों और लोगों के बारें में हमारे विश्वास से निर्देशित हों। जिन्हे हम पंसद या नापसंद करते हैं। इस प्रकार देखें तो लोगों को सीमित संकल्पना पर आधारित समुदायों की ओर ले जाया जा रहा है जिनमें वे उन्ही लोगों की बात सुनते हैं जिनके विचार इनके विचारों के समान होते हैं और वे मौलिक रुप से निम्न विश्वासों वालें लोगों से किनारा कर लेते हैं।

मैं नेताओं के लिए क्या जरुरी है, यह कहकर अपनी बात समाप्त कर रहा हूं। प्रत्येक देश में लोगों में, और साथ ही सभी देशों में, टिकाऊ विकास की एक समेकित परिकल्पना (विजन) होनी जरूरी है। लोगों के भविष्य को प्रभावित करने वाली नीतियों में जनता की भागीदारी बढ़ाने के लिए और अधिक प्रभावशाली प्रक्रियाएं अपनानी चाहिये। 21वीं शताब्दी के नेता की भूमिका वही व्यक्ति अदा करेगा, जो नेतृत्व करेगा और संवाद का अवसर सुलभ कराएगा। ❑

(लेखक योजना आयोग में सदस्य हैं।
ई-मेल : arun.maira@nic.in **)**

卐 ॐ साईं राम 卐

मैथिली द्वारा डॉ. शेखर झा

(2006 से अब तक 95% रिजल्ट हमारे संस्थान से)

- 8 वर्षों से UPSC का सर्वाधिक औसत अंक वाला विषय
- हिन्दी जानने वालों के लिए सबसे सरल, सहज और अंकदायी विषय। Avg. अंक - 55%

Fees : 15000/- मात्र | **Course Duration : 2½ Months**

4 Free Classes | **Batches - Every Month** | **कक्षा लेखन प्रशिक्षण से प्रारंभ**

Evening, Morning & Weekend Batch Available, Correspondence Course also Available

मंथन™ IAS ACADEMY

204, A-40-41, IIIrd Floor, Ansal Building, Above HDFC Bank
(Back side Entery) Dr. Mukherjee Nagar
8527333213, 8527345701
9968548859, 011-31921213
Email : manthanias.shekharjha@gmail.com
Web-site : • www.maithilibyshekharjha.in • www.manthaniasacademy.in

YH-254/2014

चिकित्सकों की कमी से जूझता ग्रामीण भारत

• ऋतु सारस्वत

इस सत्य को स्वीकारना अब हर चिकित्सक के लिए आवश्यक हो गया है कि वह समझे कि चिकित्सकीय कार्य व्यवसाय से कहीं अधिक सेवा कार्य है। स्वस्थ भारत के निर्माण हेतु भगीरथ प्रयास की आश्यकता है। अगर इस ओर ध्यान नहीं दिया गया तो देश का विकास केवल पन्नों पर ही सिमट कर रह जाएगा

देश के ग्रामीण इलाकों तक स्वास्थ्य सुविधाएं पहुंचाना, स्वस्थ भारत के स्वप्न को साकार करने में सबसे बड़ी चुनौती है। इस सत्य से कोई इंकार नहीं कर सकता कि आज भी कोई चिकित्सक गांवों में काम नहीं करना चाहता। गांवों में चिकित्सकों की कमी को पूरा करने के लिए सरकार की ओर से एमबीबीएस की पढ़ाई पूरी करने के बाद कम से कम एक वर्ष गांव में काम करने के बाद डिग्री देने की नीति पर सहमति नहीं बन पा रही है। मेडिकल कांउसिल ऑफ इंडिया ने एमबीबीएस की डिग्री 6.5 वर्ष में देने के दिशानिर्देश दिए हैं। परंतु मेडिकल कॉलेजों ने इसे जहां अव्यावहारिक बताया, वहीं इंडियन मेडिकल एसोसिएशन चाहता है कि नौकरी देने की शर्त पर ही स्नातक डॉक्टर गांवों में काम करने जाएंगे। गौरतलब है कि रुग्ण ग्रामीण भारत की तस्वीर सुधारने के लिए केंद्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारों को अरबों रुपये की धनराशि दी जा रही है परंतु राज्य सरकारों की समस्या यह है कि उनके पास गांवों में काम करने के लिए चिकित्सक नहीं हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं को बेहतर बनाने के लिए केंद्र सरकार लंबे समय से किसी व्यावहारिक उपाय पर विचार कर रही थी। ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सकों की कमी को दूर करने के लिए देश के हर जिले में दो सौ बिस्तर वाले सरकारी अस्पताल को बनाकर वहां एक मेडिकल स्कूल खोलने तथा साढ़े तीन वर्ष में उन्हें डिग्री देने की योजना बनाई थी। परंतु आईएमएम. डॉक्टरों के विरोध के चलते यह योजना क्रियान्वित नहीं हो पाई। अब स्वास्थ्य मंत्रालय ने फ़ैसला किया है कि जो विद्यार्थी एमबीबीएस की पढ़ाई पूरी करने के बाद विशेषज्ञता हासिल करने के लिए आगे की पढ़ाई करना चाहते हैं उन्हें अनिवार्य रूप से एक साल तक ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करना होगा। आंध्र प्रदेश सरकार ने अपने यहां चिकित्सा पंजीकरण कानून में संशोधन भी कर दिया है। हर वर्ष करीब 40 हजार युवा एमबीबीएस की पढ़ाई करते हैं, मगर वे गांवों में नहीं जाना चाहते। ग्रामीण क्षेत्रों में मौजूदा ढांचागत आधार के अनुसार कुल 70.2 प्रतिशत विशेषज्ञ चिकित्सकों की कमी है। इसमें 75 प्रतिशत शिशु विशेषज्ञ, 70.9 प्रतिशत सर्जन तथा 60 प्रतिशत महिला रोग विशेषज्ञों की कमी बनी हुई है। देश में दस में से आठ चिकित्सक और 80 प्रतिशत अस्पताल शहरों में हैं। बीते दशकों में चिकित्सकीय पेशे को 'सेवा' से जोड़ने के बजाय व्यावसायिकता के परिप्रेक्ष्य में देखने की प्रवृत्ति में तीव्रता से इजाफा हुआ है जिसकी परिणति यह हुई है कि देश का निर्धन तबका रुग्ण होता चला जा रहा है। मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा, 1948 के अनुच्छेद 25 के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे जीवनस्तर का अधिकार है जो स्वयं उसके और उसके परिवार के स्वास्थ्य और कल्याण के लिए उपयुक्त हो। इसमें स्वास्थ्य संबंधी देखरेख की उचित सुविधा तथा आवश्यक सामाजिक सुरक्षा, व्यवस्था का अधिकार शामिल है। इस प्रकार मानवाधिकार की सार्वभौम घोषणा की 'चिकित्सकों की कमी' के चलते अवहेलना हो रही है।

ग्रामीण इलाकों के प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों में प्रशिक्षित चिकित्सकों के अभाव में लोग दाइयों, स्वास्थ्य सहायकों और अर्ध-चिकित्सकों के भरोसे हैं। देश की समस्या, मूलतः इस समय जमीनी स्तर पर सेवाओं में सुधार करने की है। देश में ऐसे चिकित्सकों की संख्या बहुत कम है जो अपने पद से जुड़े तुच्छ

योजना आयोग के स्वास्थ्य समूह ने सन् 2028 तक संगठन के मानक को हासिल करने की बात कही है हालांकि 12वीं पंचवर्षीय योजना में देश के सभी 635 जिला अस्पतालों तथा समुदाय स्तर के 4.535 उच्चीकृत स्वास्थ्य केंद्रों को प्रशिक्षण केंद्र में तब्दील करने का विचार है।

स्वार्थों को छोड़कर अपने पेशे की गरिमा बनाए हुए हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार चिकित्सा और जनसंख्या के अनुपात के लिहाज से भारत की स्थिति अफ्रीका महाद्वीप के सहारा क्षेत्र से कोई खास अच्छी नहीं है। इस रिपोर्ट के अनुसार भारत में दो हजार लोगों पर जहां लगभग 1 चिकित्सक है वहीं ऑस्ट्रेलिया में यह अनुपात 247:1 और ब्रिटेन में 1663:5 है। योजना आयोग की ताज़ा रिपोर्ट के मुताबिक देश में छह लाख चिकित्सकों की कमी है। योजना आयोग के स्वास्थ्य समूह ने सन् 2028 तक संगठन के मानक को हासिल करने की बात कही है हालांकि 12वीं पंचवर्षीय योजना में देश के सभी 635 जिला अस्पतालों तथा समुदाय स्तर के 4.535 उच्चीकृत स्वास्थ्य केंद्रों को प्रशिक्षण केंद्र में तब्दील करने का विचार है। समस्या सिर्फ इतनी नहीं है, यहां हर साल अनेक छात्र चिकित्सक बनने के लिए मेडिकल कॉलेजों में दाखिला लेते हैं और उच्च अध्ययन के लिए विदेश जाने पर लौट कर नहीं आते। कुछ वर्षों पहले एक अध्ययन प्रकाशित किया गया था कि एम्स में साढ़े पांच साल की एमबीबीएस की पढ़ाई पूरी करवाने में प्रति छात्र करोड़ों रुपये ख़र्च होते हैं लेकिन 53 फीसदी चिकित्सक 'स्टडी लीव' के नाम पर विदेश चले जाते हैं और लौट कर नहीं आते। वर्तमान में देश के डेढ़ लाख उपकेंद्रों में एक भी चिकित्सक नहीं है।

ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सकों की, विशेषकर विशेषज्ञों की कमी दूर करने के लिए गहन मंथन की आवश्यकता है। ग्रामीण परिवेश में ऐसे चिकित्सकों की कहीं अधिक आवश्यकता है जो फ्रेक्चर ठीक करने और प्रसव कराने जैसी बुनियादी आवश्यकताओं में माहिर हों। इस प्रकार की विशेषज्ञता को हासिल करने में 'फेमिली मेडिसन पाठ्यक्रम' अपनी महत्ती भूमिका निभा सकता है। ऐसा नहीं है कि इस प्रकार के पाठ्यक्रमों की उपलब्धता मेडिकल कॉलेजों में नहीं है परंतु उस रूप में उसे वह सम्मानित स्थान प्राप्त नहीं है जिस रूप में होना चाहिए। विशेषज्ञता के युग में इस प्रकार के पाठ्यक्रम अपनाने वालों को जनरल प्रैक्टिशनर बुलाया जाता है जोकि किसी भी प्रतिभावान चिकित्सक को स्वीकार्य नहीं होता, इसलिए जरूरी है कि फेमिली मेडिसन पाठ्यक्रम को अपनाने वाले चिकित्सकों को समुचित सम्मान व पद दिया जाए। यह भी जरूरी है कि जो विद्यार्थी प्रतिभावान हैं परंतु निर्धन हैं उनके लिए 'विशेष कोटा' बनाया जाए। इस प्रावधान के साथ कि वे अपने जीवन के कुछ वर्ष ग्रामीण क्षेत्रों में देंगे।

चिकित्सकों की कमी पर तो आमतौर पर सभी का ध्यान जाता ही है, पर एक गंभीर मुद्दा भारतीय चिकित्सकों के साथ और भी जुड़ा हुआ है और वह है- 'चिकित्सकीय पेशे की मानवीयता।' योजना आयोग के एक विशेषज्ञ दल ने 2020 तक सबको स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराने के लक्ष्य के मद्देनजर एक अहम सिफ़ारिश की कि एकक राष्ट्रीय स्वास्थ्य विनियामक एवं विकास प्राधिकरण की स्थापना की जानी चाहिए ताकि मरीजों के अधिकार पत्र की व्याख्या एवं उस पर गुणवत्ता एवं कीमत की निगरानी हो सके। एक अन्य समस्या अनावश्यक दवाओं की है जो चिकित्सक संभवतः कंपनियों को फायदा पहुंचाने के लिए लिखते हैं। विशेषज्ञ दल ने ऐसी दवाओं की जगह जेनेरिक दवाओं का उपयोग बढ़ाने की पैरवी की है और इस संबंध में चिकित्सकों एवं मरीजों को जागरूक बनाने पर जोर दिया है। एक और महत्वपूर्ण तथ्य, जिसे विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट में उल्लेखित किया गया है कि एक चिकित्सक हर मरीज को कितना समय दे? यह प्रश्न इसलिए महत्वपूर्ण है कि मरीज और चिकित्सक के मध्य हुए संवाद जिसमें दवाइयों के संबंध में जानकारी, उनको समय पर लेने के महत्व से लेकर बीमारी के जल्द ठीक होने का आश्वासन, 'स्वस्थता' के मार्ग के सहायक की भूमिका निभाता है। रॉयल कॉलेज ऑफ जनरल प्रेक्टिशनर्स (ब्रिटेन) एक जनरल प्रेक्टिशनर (चिकित्सक) को इस प्रकार परिभाषित करना है - 'वह डॉक्टर जो व्यक्तियों व परिवारों को निजी तौर पर प्राथमिक एवं सतत् चिकित्सा प्रदान करता है। वह अपने मरीजों को उनके घरों मे सलाह कक्ष में या अस्पतालों में देखता है। उसके मरीज जो भी समस्या लेकर आते हैं जब वह ठीक समझता है तो वह विशेषज्ञों से सलाह लेता है।' जनरल प्रैक्टिशनर या पारिवारिक चिकित्सक का यह रूप भारत में ही नहीं दिखाई देता। विकासशील देशों में चिकित्सक हर मरीज को देखने में औसतन एक मिनट से भी कम वक्त लगाते हैं, जिससे अक्सर मरीज यह नहीं समझ पाते कि उन्हें दवाइयां कब और कैसे लेनी है। अमूमन देखने में यह आता है कि चिकित्सक मरीजों को दवाओं के बारे में

समस्या योजना के निर्माण और उनके क्रियान्वयन की नहीं, समस्या चिकित्सकीय संस्कृति में आमूलचूल बदलाव की है। भारत एक लोकतंत्रात्मक देश है जहां किसी व्यक्ति विशेष को उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी कार्य को करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता परंतु जब मानव स्वास्थ्य जैसा संवदेनशील विषय हो तो कठोर कदम उठाने से भी सरकार को नहीं हिचकना चाहिए।

ठीक से नहीं समझाते उसकी वजह से मरीज नियमित रूप से दवाएं नहीं लेते। उदारणतः तपेदिक जैसी बीमारी जिसमें इलाज महीनों चलता है और क्योंकि मरीज नियमित इलाज के महत्व से अनभिज्ञ होते हैं, इसलिए अक्सर

बीच में इलाज छोड़ देते हैं, जिससे बीमारी पुनः अपनी जड़ें गहरी कर लेती है और यही कारण है कि भारत इस बीमारी पर उस गति से नियंत्रण नहीं कर पा रहा है जोकि अपेक्षित है। बीते दशकों में चिकित्सकीय पेशे से मानवीयता का पक्ष लुप्त-सा हो गया है। दरअसल, चिकित्सा एक व्यवसाय नहीं अपितु एक ऐसा पेशा है जिसमें दयालुता, कर्तव्यनिष्ठा के साथ निज स्वार्थों को तज कर मानव-जीवन के उन्नयन एवं पल्लवन के लिए असीम चेष्टा करनी होती है। देश में ऐसे चिकित्सकों की संख्या बहुत कम है, जो अपने पद से जुड़े तुच्छ स्वार्थों को छोड़कर पेशे की गरिमा बनाए हुए हैं। छत्तीसगढ़ का गनियारी गांव चंद सेवाभावी चिकित्सकों के सेवाकार्यों के चलते आज मिसाल बन गया है। चिकित्सकों के सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यक्रम की बदौलत वहां 21 आदिवासी गांवों में शिशु मृत्युदर घटकर आधी रह गई है और मलेरिया के मामलों में दो तिहाई कमी हुई है। इसी तरह तमिलनाडु के धर्मपुरी जिले में सिटलिंगी इलाके में एक चिकित्सक दंपत्ति की निःस्वार्थ सेवाओं के फलस्वरूप शिशु मृत्युदर प्रतिहज़ार 154 से घटकर 68 रह गई है लिहाजा जब कुछ चिकित्सक सीमित संसाधनों के बावजूद ऐसे सकारात्मक परिणाम ला सकते हैं तो दूसरे चिकित्सक ऐसा क्यों नहीं कर सकते? चिकित्सकीय पेशे से जुड़े लोगों में घटते सामाजिक मूल्यों के साथ बढ़ती उपभोक्तावादी संस्कृति ने ग्रामीण भारत को अस्वस्थ बना रखा है ऐसे में सरकार को ऐसी नीतियां बनानी चाहिए जिसमें चिकित्सकों के लोभ पर तो अंकुश लगे।

समस्या योजना के निर्माण और उनके क्रियान्वयन की नहीं, समस्या चिकित्सकीय संस्कृति में आमूलचूल बदलाव की है। भारत एक लोकतंत्रात्मक देश है जहां किसी व्यक्ति विशेष को उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी कार्य को करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता परंतु जब मानव स्वास्थ्य जैसा संवदेनशील विषय हो तो कठोर कदम उठाने से भी सरकार को नहीं हिचकना चाहिए। सरकार को ऐसी नीति बनानी चाहिए जिसके तहत प्रत्येक डॉक्टर को तब तक प्राइवेट प्रैक्टिस के लिए लाइसेंस न दिया जाए जब तक वे कुछ वर्षों तक अपनी सेवाएं गांव में जाकर न दें। निजी अस्पतालों को भी लाइसेंस देते समय यह प्रावधान रखा जाए कि वह महीने या कुछ दिनों के लिए निःशुल्क या रियायती दरों पर ग्रामीण इलाकों में अपने स्वास्थ्य कैंप लगाएं और इन सबसे प्रमुख मेडिकल कॉलेजों में प्रवेश लेने के साथ ही विद्यार्थियों से यह शपथ-पत्र भरवाया जाए कि वह अपनी शिक्षा पूर्ण होने के उपरांत कुछ समय के लिए ग्रामीण इलाकों में अपनी सेवाएं प्रदान करेंगे। इस सत्य को स्वीकारना अब हर चिकित्सक के लिए आवश्यक हो गया है कि वह समझे कि चिकित्सकीय कार्य व्यवसाय से कहीं अधिक सेवा कार्य है। स्वस्थ भारत के निर्माण हेतु भगीरथ प्रयास की आश्यकता है। अगर इस ओर ध्यान नहीं दिया गया तो देश का विकास केवल पन्नों पर ही सिमट कर रह जाएगा। ❑

(लेखिका महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय से संबद्ध हैं।
ई-मेल : sarswatritu@yahoo.com **)**

क्रॉनिकल
आईएएस एकेडमी
सिविल सर्विसेज़ क्रॉनिकल की पहल
हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम में
आईएएस 2014 प्रोग्राम
प्रातः | सायं | सप्ताहांत
सा. अध्ययन फाउंडेशन
प्रा. परीक्षा / सीसैट
समसामयिकी
जीएस पेपर IV
नीतिशास्त्र, सत्यनिष्ठा और अभिरूचि
पी.टी. टेस्ट सीरीज
वैकल्पिक विषयः लोकप्रशासन और इतिहास
प्रवेश प्रारम्भ
*सीमित सीट
सिविल सर्विसेज़ क्रॉनिकल
24 वर्षों से सफलता का मार्गदर्शक
नॉर्थ कैंपस (दिल्ली सेन्टर)
2520, हडसन लेन, विजय नगर चौक, दिल्ली-09
(जी.टी.बी मैट्रो स्टेशन के समीप)
www.chronicleias.com
जानकारी के लिए एसएमएस या कॉल करें:
8800495544, 9953120676
SMS: "CAMPUS YH" to 56677
YH-252/2014

स्वास्थ्य मोर्चे पर असफल क्यों

• रवि शंकर

भलें हीं मौजूदा बजट में राष्ट्रीय स्वास्थ्य योजना खर्च में वृद्धि की गई है लेकिन जनसंख्या, रोगों की स्थिति और मंहगाई की वृद्धि दर की तुलना में यह राशि खास मायने नहीं रखती क्योंकि जीवनरक्षक दवाओं तथा कैंसर व हृदय रोग जैसी बीमारियों से निपटना आज आम आदमी की पहुंच से बहुत दूर है

भगवान बुद्ध ने कहा था ''शरीर को अच्छी तरह स्वस्थ रखना एक दायित्व है उसके बिना हम अपना मस्तिष्क मजबूत और स्पष्ट नहीं रख पाएंगे।'' परंतु जब हम अपने देश में स्वास्थ्य के स्तर पर निगाह डालते हैं तो एक निराशाजनक तस्वीर ही सामने आती है। जबकि आज पूरी दुनिया के सभी देश अपने नागरिकों के स्वास्थ्य के प्रति सजग हैं और हर संभव सहायता उपलब्ध करा कर स्वास्थ्य के प्रति जवाबदेह रहने के लिए प्रेरित करते रहते हैं। लेकिन विकसित देशों को छोड़ दिया जाए तो विकासशील देशों में स्वास्थ्य आज भी एक बड़ी समस्या बनी हुई है। भारत भी इससे अछूता नहीं है। कारण स्वास्थ्य के मामले में देश इन दिनों गंभीर चुनौतियों का सामना कर रहा है। पुराने रोगों के साथ ही नयी जानलेवा बीमारियां नयी चुनौतियां पेश कर रही हैं। फिर भी अपने नागरिकों के स्वास्थ्य पर सरकार द्वारा किये जाने वाले ख़र्च से यह पता चलता है कि वर्तमान समाज का राजनीतिक नेतृत्व जनस्वास्थ्य को लेकर कितना सजग है। भारत में आज जीडीपी का महज 1.3 प्रतिशत स्वास्थ्य सेवाओं पर ख़र्च होता है, जो काफी कम है। वहीं यह अमरीका, यू. के., ऑस्ट्रेलिया, नार्वे तथा ब्राज़ील जैसे देशों में 4 प्रतिशत से अधिक हो रहे व्यय के स्तर से काफी कम है। हालांकि स्वास्थ्य मंत्रालय ने 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012-2017) के लिए योजना आयोग के स्वास्थ्य संबंधी मसौदे पर एतराज जताया है। इस मसौदे में स्वास्थ्य सेवाओं में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ाने का प्रस्ताव रखा गया है। मंत्रालय का कहना है कि स्वास्थ्य पर सार्वजनिक क्षेत्र का खर्च सकल घरेलू उत्पाद का कम से कमी 2.5 फीसदी होना चाहिए और योजना के अंत तक यानी 2017 तक इसे बढ़ाकर 2.85 फीसदी कर दिया जाए। उल्लेखनीय है कि योजना आयोग ने 12वीं पंचवर्षीय योजना में प्रमुख सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्च जीडीपी का सिर्फ 1.87 फीसदी करने का प्रस्ताव रखा है। बहरहाल, पूरी आबादी को स्वास्थ्य संबंधी अच्छी सुविधा उपलब्ध कराने के लिए जीडीपी का 2 से 3 प्रतिशत स्वास्थ्य पर खर्च करेगी जो आज भी केवल कागजों की शोभा बढ़ा रहा है। वहीं सिर्फ 10 फीसदी भारतीयों के पास हेल्थ इंश्योरेंस है और यह बीमा भी उनकी सेहत की जरूरतों के हिसाब से पर्याप्त नहीं है। सवाल यह है कि भारत में स्वास्थ्य संबंधी स्थिति इतनी दयनीय क्यों है? इसके पीछे कई वजहें हैं। जैसे कि प्रतिव्यक्ति डॉक्टरों की उपलब्धता, अस्पताल में बिस्तरों की उपलब्धता, धन की कमी और व्यवस्था में व्याप्त खामियों के कारण स्वास्थ्य के मोर्चे पर हमारा प्रदर्शन

बेहतर नहीं है। ऐसे में यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि भारत की स्वास्थ्य-सेवा के प्रति सरकार कितनी लापरवाह है। यही वजह है कि आज स्वस्थ भारत का निर्माण चुनौती बन गई है।

हक़ीक़त यह है कि भारत में अन्य देशों की अपेक्षा महिलाओं और बच्चों की मृत्युदर काफी अधिक है जिससे यह पता चलता है कि यहां स्वास्थ्य देखभाल की स्थिति अच्छी नहीं है। 'सेव द चिल्ड्रेन' की विश्व की मांओं की स्थिति पर जारी एक रिपर्ट में भारत को दुनिया के 80 कम विकसित देशों में 76 वां स्थान मिला है। इस मामले में भारत कई गरीब अफ्रीकी देशों से भी पीछे है। रिपोर्ट के मुताबिक भारत में हर 140 महिलाओं में एक पर बच्चे को जन्म देने के दौरान मरने का जोखिम रहता है। यह आंकड़ा चीन और श्रीलंका जैसे पड़ोसी

शहर तथा गांव दोनों ही अपर्याप्त चिकित्सा सुविधाओं से जूझ रहे हैं। डॉक्टरों की कमी दोनों ही जगहों पर है, परन्तु गांवों में यह समस्या और विकट है। केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री ने यह स्वीकार किया कि पर्याप्त प्रोत्साहन के बावजूद गांवों में डॉक्टर जाना नहीं चाहते, इसलिए केंद्र सरकार ने एमबीबीएस डिग्री प्राप्त करने से पहले मेडिकल विद्यार्थियों के लिए यह बाध्यता रखी है कि उन्हें छह महीने अनिवार्य रूप में गांवों में काम करना होगा।

देशों की तुलना में कहीं अधिक है। चीन में हर 1,500 सौ महिलाओं में एक महिला पर प्रसव के दौरान मौत का खतरा होता है। वहीं श्रीलंका में यह आंकड़ा 1,100 पर एक और म्यामां में 180 पर एक है। यह आंकड़े दर्शाते हैं कि भूमंडलीकरण के इस दौरान में भारत की स्वास्थ्य सेवा किस हालात में है। वहीं भारत में कुपोषण की समस्या को लेकर विश्व स्वास्थ्य संगठन, यूनीसेफ और स्वयंसेवी संगठन निरंतर चिंता जाहिर करते रहते है। परंतु केंद्र सरकार एवं राज्य सरकारें इस संदर्भ में संवेदन शून्य प्रतीत होती हैं। संयुक्त राष्ट्र की कुछ समय पूर्व जारी रिपोर्ट ने इस तथ्य की पुष्टि की है कि विकास के तमाम दावों के बावजूद भारत में कुपोषण की समस्या अपने गंभीर रूप में ज्यों की त्यों बनी हुई है। वास्तविकता यह है कि भारत में कुपोषण के शिकार बच्चों की संख्या पड़ोसी देश जैसे बांग्लादेश और नेपाल से भी अधिक है। यहां तक कि यह उप सहारा अफ्रीकी देशों से भी अधिक है। क्योंकि भारत में कुपोषण का दर लगभग 55 प्रतिशत है जबकि अफ्रीका में यह 27 प्रतिशत के आसपास है। सेव द चिल्ड्रेन के अनुसार भारत में रोजाना पांच हजार से भी अधिक बच्चे कुपोषण के कारण दम तोड़ देते है। देश में हर साल 25 लाख शिशुओं की अकाल मृत्यु होती है तथा 42 फीसदी बच्चे गंभीर कुपोषण का शिकार होते हैं। जबकि एक अनुमान के मुताबिक दुनियाभर में 14,600 बच्चे हर रोज मर जाते है। यह साफ है कि विश्व में कुल मरने वाले बच्चों में एक तिहाई भारत के हैं। इन आंकड़ों से इंगित होता है कि हमारे देश में गर्भवती महिलाओं तथा बच्चों के स्वास्थ्य की देखभाल अपने पड़ोसी मुल्कों की तुलना में कम होती है। यह विडंबना तब है जब भारत में इन समस्याओं से निपटने के लिए सभी जरूरी कार्यक्रम और नीतियां मौजूद हैं,लेकिन इन्हें सही तरह से लागू नहीं किया जा रहा है। हालांकि राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन की घोषणा और क्रियान्वयन से यह आस बधीं थी कि अस्वस्थ भारत की तस्वीर बदल जाएगी परंतु स्थिति बदतर होती जा रही है।

निस्संदेह रूप से भारत की मौजूदा स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली अनेक प्रकार की विसंगतियों एवं विषमताओं से परिपूर्ण है। परिणामस्वरूप शहर तथा गांव दोनों ही अपर्याप्त चिकित्सा सुविधाओं से जूझ रहे हैं। डॉक्टरों की कमी दोनों ही जगहों पर है, परन्तु गांवों में यह समस्या और विकट है। केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री ने यह स्वीकार किया कि पर्याप्त प्रोत्साहन के बावजूद गांवों में डॉक्टर जाना नहीं चाहते, इसलिए केंद्र सरकार ने एमबीबीएस डिग्री प्राप्त करने से पहले मेडिकल विद्यार्थियों के लिए यह बाध्यता रखी है कि उन्हें छह महीने अनिवार्य रूप में गांवों में काम करना होगा। इस दौरान उन्हें राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन से जुड़ना होगा जिससे वे गांवों की स्वास्थ्य सेवाओं में अपना योगदान कर सकें। इससे जहां गांवों में लोगों को उपचार की सुविधा मिलेगी, वहीं डॉक्टर गंभीर तथा घातक बीमारियों की जानकारी भी प्राप्त कर सकेगें। सुदूर गांवों में आज भी महिला का प्रसव वहां किसी प्रशिक्षित नर्स द्वारा नहीं की जाती बल्कि उम्रदराज महिला द्वारा किया जाता है। यही नहीं गांवों में पाई जानेवाली जड़ी-बूटियों द्वारा देसी इलाज भी वहां की महिलाएं करती हैं और कहीं-कहीं तो झाड़-फूंक का भी सहारा लिया जाता हैं। एक प्रकार से गांव की सच्चे अर्थों में वे हीं 'आशा' हैं।

यह भी वास्तविकता है कि शहरों में सरकारी अस्पतालों में स्वास्थ्य की इस खस्ता हालत की वजह से इस क्षेत्र में निजी क्षेत्र को फलने-फूलने का पर्याप्त अवसर मिला है लेकिन महंगी स्वास्थ्य सेवाएं गरीबों की पहुँच से दिनों-दिन दूर होती जा रही है। इस मामले में ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य की स्थिति और ज्यादा

यह भी वास्तविकता है कि शहरों में सरकारी अस्पतालों में स्वास्थ्य की इस खस्ता हालत की वजह से इस क्षेत्र में निजी क्षेत्र को फलने-फूलने का पर्याप्त अवसर मिला है लेकिन महंगी स्वास्थ्य सेवाएं गरीबों की पहुँच से दिनों-दिन दूर होती जा रही है। इस मामले में ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य की स्थिति और ज्यादा चिंताजनक बनी हुई है।

चिंताजनक बनी हुई है। इलाज पर बढ़ते खर्च की वजह से प्रत्येक साल करीब 4 करोड़ लोग गरीबी के दायरे में आ जाते हैं। दूसरे शब्दों में, कहें तो तकरीबन 25 फीसदी भारतीय सिर्फ अस्पताली खर्चे के कारण गरीबी रेखा से नीचे हैं। यह एक ऐसा तथ्य है जिसकी उपेक्षा कतई नहीं की जानी चाहिए, क्योंकि आर्थिक प्रगति के बल पर अगले कुछ सालों के भीतर विकसित

देशों की कतार में शामिल होने को व्यग्र भारत का विकास तब तक अधूरा ही कहलाएगा जब तक यहां का हर नागरिक स्वस्थ न हो। विश्व जनसंख्या में 16.5 प्रतिशत भागीदारी निभाने वाला भारत विश्व की बिमारियों में 20 प्रतिशत का योगदान करता है। हैरानी वाली बात तो यह है कि भारत अभी भी बाल मृत्युदर कम करने के लिए निर्धारित किए गए विभिन्न सहस्त्राब्दि स्वास्थ्य लक्ष्यों को प्राप्त करने में श्रीलंका जैसे विकासशील देश से भी पीछे है। जबकि बाल और मातृ-मृत्युगमिता से संबंधित सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्य का साल 2015 तक को पूरा करने के लिए 36-45 अरब अतिरिक्त रकम की आवश्यकता है यह रकम उतनी ही है जितनी विश्वभर में उपभोक्ता बोतलबंद पानी पर सालभर में ख़र्च करते हैं।

यह ठीक है कि केन्द्र एवं राज्य सरकारें लोगों को शानदार स्वास्थ्य सेवाएं मुहैया कराने हेतु कई कल्याणकारी योजनाएं चलाती हैं। हालांकि वर्ष 2005 में शुरू किया गया, राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन, एक ऐसी प्रमुख पहल थी जिसका उद्देश्य हमारे देश में स्वास्थ्य सेवाओं की पुनर्सरचना करना था। इसका डिजाइन, स्वास्थ्य सेवा को उप-केंद्रों, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों तथा सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों के माध्यम से ग्रामीण जनता के दरवाजों तक ले जाने के लिए बनाया गया था। सरकार इस मुहिम से हाल के वर्षों में कुछ संदर्भो में जरूर सुधार दर्ज हुए हैं। फिर भी स्वास्थ्य के मामले में देश में सबसे बुरी स्थिति महिलाओं की है। इनमें कैंसर, कुपोषण, रक्ताल्पता जैसे मामले बहुतायत हैं। लेकिन अह्म बात यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य संबंधी जागरुकता का भी अभाव पाया गया है। साथ ही, नवजात शिशुओं में कुपोषण व अपंगता की समस्या तथा बाल व मातृत्व मृत्युदर को नियंत्रित किया जा सके। फिर भी भारत में स्वास्थ्य सेवाएं लगातार बद से बदतर होती जा रही हैं। देश में प्रतिव्यक्ति के स्वास्थ्य के हिसाब से न डॉक्टर उपलब्ध हैं और न दवाएं। जबकि शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों की बड़ी आबादी सरकारी अस्पतालों पर निर्भर हैं। ऐसे में, जरूरी यह है कि सरकारी अस्पतालों की सेवाएं इतनी बेहतर बनाई जाएं कि लोगों को निजी अस्पतालों का मुंह न ताकना पड़े। दरअसल अमरीका, चीन और ब्राजील की तुलना में भारत में लोगों को स्वास्थ्य सेवा हासिल करने के लिए अपनी जेब से कहीं ज्यादा रकम खर्च करनी पड़ती है।

> **भारत में स्वास्थ्य सेवाएं लगातार बद से बदतर होती जा रही हैं। देश में प्रतिव्यक्ति के स्वास्थ्य के हिसाब से न डॉक्टर उपलब्ध हैं और न दवाएं। जबकि शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों की बड़ी आबादी सरकारी अस्पतालों पर निर्भर हैं। ऐसे में, जरूरी यह है कि सरकारी अस्पतालों की सेवाएं इतनी बेहतर बनाई जाएं कि लोगों को निजी अस्पतालों का मुंह न ताकना पड़े।**

भलें हीं मौजूदा बजट में राष्ट्रीय स्वास्थ्य योजना खर्च में वृद्धि की गई है लेकिन जनसंख्या, रोगों की स्थिति और मंहगाई की वृद्धि दर की तुलना में यह राशि खास मायने नहीं रखती क्योंकि जीवनरक्षक दवाओं तथा कैंसर व हृदय रोग जैसी बीमारियों से निपटना आज आम आदमी की पहुंच से बहुत दूर है। ऐसे में सरकार को स्वास्थ्य नीति पर गंभीरता से सोचना चाहिए। रोगों से बचाव पर ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है। साथ ही देसी चिकित्सा पद्दतियों को उपचार की मुख्यधारा में शामिल कर प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा मजबूत बनाने की पहल करनी चाहिए है। ❑

(लेखक सेंटर फॉर एन्वायरमेंट एंड फूड सिक्योरिटी में रिसर्च-एसोसिएट हैं।
ई-मेल : ravishankar.5107@gmail.com

अपने लेख हमें ई-मेल करें

आप हमें अपने लेख और पत्र ई-मेल भी कर सकते हैं। ई-मेल करने के लिए कृतिदेव फांट इस्तेमाल करें और वर्ड ओपन फाईल yojanahindi@gmail.com पर भेजें। एक से अधिक लेखकों के नाम केवल विशेष शोध लेखों पर हीं दें। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाणपत्र संलग्न नहीं होगा वे स्वीकार नहीं की जा सकेगी। रचना के प्रकाशन के संबंध में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार अथवा फोन न करें। विशेष अवसरों के लिए लेख तीन माह पूर्व प्राप्त हो जाने चाहिए। रचनाओं के साथ यथासंभव प्रासंगिक चित्र भी भेजें। डाक से भेजे जाने वाले लेखों की एक प्रति सीडी में भी भेजें। वापसी के लिए कृपया टिकट लगा और पता लिखा लिफ़ाफ़ा संलग्न करें।

जब जानलेवा बन जाए जीवनशैली

• अभिनीत कुमार

जिंदगी में कुछ हासिल करने की चाहत और कामयाबी की हसरत के साथ ही जीवनशैली से जुड़ी बीमारियां मुफ्त में आपको मिल रहीं हैं। कुछ फैसले लेने होंगे। अपने शरीर की ज़रूरतों का भी उतना ही ध्यान रखना होगा जितनी हम अपने भविष्य की कर रहें हैं। इन बीमारियों की जड़ आपकी आदतों में छिपी हुई हैं। अच्छे व स्वस्थ्य भविष्य के लिए जरूरी है कि हम उन आदतों को बदल डालें जो धीरे-धीरे हमें गंभीर बीमारियों की गोद में धकेल रही हैं

सिगरेट ही शायद देश में ऐसा इकलौता उत्पाद होगा जिसका प्रत्यक्ष या परोक्ष विज्ञापन न दिखाई देता है और न सुनाई देता है फिर भी हक़ीक़त यह है कि सिगरेट पीना एक आदत से बढ़कर चलन में तब्दील हो गया। अमरीकन मेडिकल एसोसिएशन जर्नल में शोधकर्ताओं ने हाल ही में जानकारी दी है कि दुनियाभर में धूम्रपान करने वालों की संख्या बढ़कर एक अरब हो गई है। रिपोर्ट के मुताबिक 1980 से लेकर 2012 के बीच के 32 सालों में दुनियाभर में धूम्रपान करने वालों की संख्या में लगभग 25 करोड़ की बढ़ोतरी दर्ज की गई है। सिर्फ़ भारत में इस अवधि के दौरान धूम्रपान करने वालों की संख्या साढ़े तीन करोड़ बढ़ी है। देश में इस वक्त 11 करोड़ लोग धूम्रपान करते हैं। 125 करोड़ की आबादी वाले देश में 11 करोड़ लोगों का धूम्रपान करना दर्शाता है कि यह आदत से बढ़कर लोगों की जीवनशैली में शुमार हो गई है। विश्व स्वास्थ्य संगठन का कहना है कि विकासशील देशों में जीवनशैली में हुए बदलाव की वजह से कैंसर के मरीजों की संख्या बढ़ी है और कैंसर की बढ़ी वजहों में धूम्रपान एक है।

सिगरेट एक आदत है और रोज़मर्रा की आदतों से होने वाली बीमारियां ही जीवनशैली से जुड़ी बीमारियां होने की मुख्य वजहें हैं खाने की बुरी आदत, शारीरिक गतिविधियां कम करना, बैठने-उठने का गलत तरीक़ा और जैविक घड़ी का अस्थिर होना आदि, डब्ल्यूएचओ और वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम की रिर्पोट के मुताबिक अगले साल तक भारत को 236 बिलियन डॉलर का नुक़सान जीवनशैली से जुड़ी बीमारियों और खाने की गलत आदतों की वजह से हो जाएगा। आधुनिक जीवनशैली से उपजी बीमारियों की चर्चा ऐसे समय हो रही है जब भारत को पोलियो मुक्त राष्ट्र घोषित किया जा रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने पिछले तीन साल में पोलियो का एक भी मामला न आने पर भारत को पोलियो मुक्त राष्ट्र घोषित करने का फ़ैसला किया है। वहीं पांच साल पहले ही विश्व स्वास्थ्य संगठन ने दुनिया में तेजी से बढ़ रहे गैर-संचारी रोगों यानी नहीं फैलने वाली बीमारियों जैसे आघात, कैंसर, मधुमेह और हृदय रोगी से निपटने के लिए एक नये वैश्विक गैर-संचारी रोग नेटवर्क शुरू करने की घोषणा की थी लेकिन उसका व्यापक असर अब तक देखने को नहीं मिला है।

2005 में दुनियाभर में 60 फीसदी मौतें सिर्फ़ जीवनशैली से जुड़ी बीमारियों की वजह से हुई। ये संख्या करीब साढ़े तीन करोड़ थी। हैरान करने वाला तथ्य यह है कि मौत का ये आंकड़ा संक्रमण से फैलने वाली एड्स, टीबी, मलेरिया से हुई मौतों का लगभग दो गुना है। जीवनशैली से उपजी बीमारियों की वजह से हो रही मौतों में हर पांच में से चार लोग गरीब या फिर मध्यमवर्गीय देश के होते हैं। और इन बीमारियों में दिल का दौरा, कैंसर, सांस की बीमारी या फिर डायबिटीज जैसी बीमारियां प्रमुख होती हैं। हालत ये है कि दुनियाभर में संक्रामक रोगों पर तो काफी हद तक काबू पा लिया गया है लेकिन जीवनशैली से जुड़े रोग एक नई चुनौती बनकर उभरे हैं। 19वीं, 20वीं शताब्दी के दौरान मलेरिया और टीबी जैसे संक्रामक रोग मानव समाज के लिए खतरा थे लेकिन 20वीं, 21वीं शताब्दी में जीवनस्तर के बढ़ने के बाद जीवनशैली जान की दुश्मन बनती जा रही है।

जीवनशैली से जुड़ी बीमारियों की बड़ी वजहे है। जैसे सही, मात्रा में पौष्टिक आहार न लेना, धूम्रपान, शारीरिक गतिविधियों का कम होना, शराब और फास्टफूड का इस्तेमाल और इसी से ब्लडप्रेशर, मोटापा, मधुमेह, दिल की बिमारी, सांस की बीमारी जैसे लक्षण सामने आते हैं। लेकिन इन सबमें सबसे बड़ी बात यह

है कि इस पर किसी व्यक्ति का नियंत्रण नहीं हो सकता क्योंकि जीवनशैली के ये लक्षण समाज में बनाए गए ढांचागत माहौल की उपज हैं। मौजूदा वैश्विक परिस्थितियों में प्रतिस्पर्धा का स्तर इतना ऊंचा हो चुका है कि शरीर की क्षमता और कार्य के बीच का संतुलन खो गया है। आप नौकरी करते हों या फिर किसी कॉलेज के छात्र हों, अध्यापक हो या स्कूल जाते हों, ये आप तय नहीं

दुनियाभर के शोधकर्ताओं जिसमें अमरीका के हॉवर्ड और स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी, ब्रिटेन की ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी और भारतीय संस्थान पब्लिक हेल्थ फाउंडेशन ऑफ इंडिया (पीएचएफआई) के लोग शामिल थे के अध्ययन के मुताबिक अगले दशक में दिल की बीमारी, डायबिटीज और कैंसर से किसी भी देश से ज्यादा मौतें भारत में होंगी।

कर रहे कि जीवनशैली कैसी हो बल्कि जीवनशैली मौजूदा सामाजिक, आर्थिक, सांसकृतिक, राजनीतिक परिस्थितियां तय कर रही हैं? इन सबके बावजूद जीवनशैली से उपजी बीमारियों पर काबू पाया जा सकता है। खराब खानपान और शारीरिक गतिविधि न होने की वजह से ही हर साल दुनियाभर में करीब 40 लाख से ज्यादा मौतें होती हैं। इसके अलावा इससे अन्य दूसरी गंभीर बीमारियों का जोखिम भी बढ़ जाता है और यह 1.40 करोड़ मौतों की वजह बनता है।

बच्चों और युवाओं का खानपान सबसे बड़ी चिंता का विषय है। नाश्ते से लेकर दिन के भोजन तक और रात के भोजन तक में प्रोसेस्ड फूड यानी तैयार खाद्य पदार्थ, कोल्डड्रिंक और कई जगहों पर शराब शामिल होने लगी है। शहरी जीवनशैली में वक्त की कमी की वजह से लोगों को इन पर निर्भर भी बना दिया है। तमाम अध्ययनों में इन तीनों उद्योगों को स्वास्थ्य का दुश्मन बताया गया है। मेलबर्न यूनिवर्सिटी के अध्ययन के मुताबिक ये इंडस्ट्रीज भी तंबाकू उद्योगों की तरह ही जनस्वास्थ्य नीतियों को खोखला कर रही हैं।

ये कंपनियां विज्ञापन और प्रमोशन के जरिये खासकर 10 से 25 साल की उम्र के युवाओं को लुभाती हैं। इनमें सॉफ्टड्रिंक, पास्ता, पिज्जा, बर्गर, नूडल्स, भुजिया और मिक्चर जैसी चीजें शामिल हैं जिनके बारे में रोज टेलिविजन और अखबार में विज्ञापन दिए जाते हैं। उदाहरण के तौर पर अगर आप किसी बड़े या छोटे शहर में रहते हैं तो सार्वजनिक जगहों पर मौजूद इन चीजों के शिकंजे में आप आ ही जाएगें। मॉल से लेकर छोटे-बड़े बाजार तक फास्ट फूड ज्वाइंट पान की दुकान की तरह खुले हुए हैं। ये युवाओं को लुभाने के लिए सस्ते में उत्पाद भी उपलब्ध करवाते हैं। शीतलपेय उद्योग अपने उत्पाद को बेचने के लिए सितारों और क्रिकेटरों का सहारा लेती हैं जिनका प्रभाव युवाओं पर पड़ता है। युवाओं की आदतों से आगे बढ़कर काम करने वाले लोगों के बीच यह मजबूरी भी बन जाती है और नतीजा यह होता है कि पौष्टिक आहार की थाली ज़िंदगी से दूर जाने लगती हैं।

दुनियाभर के शोधकर्ताओं जिसमें अमरीका के हॉवर्ड और स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी, ब्रिटेन की ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी और भारतीय संस्थान पब्लिक हेल्थ फाउंडेशन ऑफ इंडिया (पीएचएफआई) के लोग शामिल थे के अध्ययन के मुताबिक अगले दशक में दिल की बीमारी, डायबिटीज और कैंसर से किसी भी देश से ज्यादा मौतें भारत में होंगी।

यहां सबसे बड़ी समस्या यह है कि लोग लक्षणों का तो इलाज करना चाहते हैं लेकिन रोग की मूल जड़ का उपचार नहीं करते, जैसे, मोटापे की वजह से शरीर में जो तकलीफें होती हैं चाहे वो मधुमेह हो या घुटने में दर्द, इलाज इन बीमारियों का होता है लेकिन जीवनशैली में परिवर्तन करके मोटापे को रोकने के कदम नहीं उठाए जाते।

पिछले साल अक्टूबर में विश्व स्वास्थ्य संगठन के निदेशक ने जीवनशैली से उपजी बीमारियों को एशिया के देशों के लिए गंभीर चुनौती बताया था। अध्ययन से पता चला था कि चीन के 12 फीसदी युवाओं को डायबिटीज था जबकि 50 फीसदी युवा डायबिटीज होने के पहले की स्थिति पर थे। जब कि 1990 में चीन के तीन प्रतिशत युवाओं में ही डायबटीज के लक्षण देखे गये थे। दिल तो दिल पेट के रोगियों की संख्या भी आधुनिक जीवनशैली ने बढ़ा दी है। डॉक्टरों के मुताबिक दुनिया में 40 फीसदी आबादी गैस्ट्रिक की समस्या से पीड़ित हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की ताजा रिपोर्ट के मुताबिक चिकित्सा क्षेत्र में भारी प्रगति के बाद भी दुनियाभर में अभी भी तीन करोड़ 80 लाख लोगों की मौतें केवल गैरसंचारी रोगों के कारण होती है जो कई रोगों के कारण होने वाली कुल मौतों का 70 फीसदी है और हर साल इनकी संख्या बढ़ती जा रही है। ये चेतावनी भी दी गई है कि अगर अगले दस सालों में गैरसंचारी रोगों को रोकने की दिशा में ठोस कदम नहीं उठाए गए तो गैरसंचारी रोगों से होने वाली मौतों में 17 फीसदी की वृद्धि हो जाएगी।

विश्व स्वाथ्य संगठन के मुताबिक :

- तंबाकू की वजह से हर साल 60 लाख मौतें होती हैं।
- 2030 तक यह आंकड़ा 80 लाख पार कर जाने की आशंका है।
- कम शारीरिक गतिविधि 30 लाख मौतों का कारण बनती है।
- करीब 10 लाख मौतों के लोगों द्वारा पीछे कम फलों और सब्जियों का सेवन करना है।

आधुनिक जीवनशैली से उपजी बीमारियों के शिकार में पुरुषों की ही प्रधानता नहीं है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के जो ताजा आंकड़े 2005-06 में प्रकाशित हुए थे उसके

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भारत को एक ऐसे देश के रूप में चिह्नित किया है जहां आने वाले दिनों में सबसे ज्यादा जीवन शैली से जुड़े रोगी होंगे। आर्थिक समृद्धि के साथ आए संकट से युवा सबसे ज्यादा प्रभावित हो रहा हैं। नतीजा यह है कि पहले जिन बीमारियों के होने की आशंका 40 साल के बाद होती थी अब वो 30 साल के युवाओं के बीच आम होती जा रही है।

मुताबिक 13 प्रतिशत महिलाएं और 9 फीसदी पुरुष मोटापे के शिकार हैं। ये आकड़े बीमारी दर बीमारी बढ़ते-घटते रहते हैं लेकिन

हक़ीक़त यह है कि जीवनशैली में आए बदलावों ने बीमारियों की आशंका को महिलाओं और पुरुषों में समान तौर पर बढ़ा दिया है। मार्च 2009 में ऐसोचैम के एक सर्वे के मुताबिक 21 से 52 साल की 68 फीसदी कामकाजी महिलाओं को मोटापा, अवसाद, स्थायी पीठ दर्द, डायबिटीज और उच्च रक्तचाप जैसी जीवनशैली से जुड़ी बीमारियां हुईं। 2008 की आर्थिक मंदी के दौरान एक अध्ययन में ये बात सामने आई थी कि भारत में 27 फीसदी महिलाएं नौकरीपेशा हैं और इनमें से 75 फीसदी कामकाजी महिलाएं अवसाद या सामान्य चिंता की बीमारी से ग्रस्त हो जाती हैं। काम और समय सीमा के दबाव में 53 फीसदी कामकाजी महिलाएं खाना नहीं खा पातीं और जंक फूड पर निर्भर हैं। ऑफिस में काम करने वाले लोग चाहे वो आठ हजार रुपये कमाने वाला साधारण कर्मचारी हो या लाखों में सैलरी पाने वाले, वक्त की कमी और उससे उपजी समस्याएं दोनों के लिए बराबर होती हैं।

इस वजह से खाने-पीने में अनियमितताएं बढ़ती जाती हैं और शारीरिक गतिविधियां भी नौकरी के मुताबिक शरीर को ढ़ालनी पड़ती हैं। नतीजा यह होता है कि किसी क्षेत्र में काम करने वाले को हाइपरटेंशन की शिकायत हो जाती है तो कहीं इंसान डिप्रेशन का शिकार होने लगता है। सीने में तकलीफ की शिकायत या शुगर की समस्या भी घेरने लग जाती है। इन्हीं सब के बीच में ऑफिस की मशीने यानी कंप्यूटर, लैपटॉप, फोन, मोबाइल जैसे साधनों पर काम करने के लिए निर्भरता भी बीमारी की तरफ आकर्षित करती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भारत को एक ऐसे देश के रूप में चिह्नित किया है जहां आने वाले दिनों में सबसे ज्यादा जीवन शैली से जुड़े रोगी होंगे। आर्थिक समृद्धि के साथ आए संकट से युवा सबसे ज्यादा प्रभावित हो रहा हैं। नतीजा यह है कि पहले जिन बीमारियों के होने की आशंका 40 साल के बाद होती थी अब वो 30 साल के युवाओं के बीच आम होती जा रही है।

जीवनशैली से जुड़ी बीमारियों के साथ एक और संकट यह है कि इनकी पहचान ही देर से होती है। अगर पहचान या जांच समय पर हो जाए तो समय रहते इन पर नियंत्रण पाया जा सकता है लेकिन महानगरों में जीवनशैली में कई बार जानकारी के अभाव में या ध्यान न देने की वजह से ब्लडप्रेशर, डायबिटीज जैसी बीमारियां बड़ी मुसीबत बनकर अचानक सामने आ जाती हैं।

जिंदगी में कुछ हासिल करने की चाहत और कामयाबी की हसरत के साथ ही जीवनशैली से जुड़ी बीमारियां मुफ्त में आपको मिल रहीं हैं। कुछ फैसले लेने होंगे। अपने शरीर की जरूरतों का भी उतना ही ध्यान रखना होगा जितनी हम अपने भविष्य की कर रहें हैं। इन बीमारियों की जड़ आपकी आदतों में छिपी हुई है। अच्छे व स्वस्थ्य भविष्य के लिए जरूरी है कि हम उन आदतों को बदल डालें जो धीरे-धीरे हमें गंभीर बीमारियों की गोद में धकेल रही हैं। ❑

(लेखक टीवी पत्रकार हैं।
ई-मेल : abhineet.pradhan@gmail.com)

CS GS
IAS
हिन्दी माध्यम को समर्पित संस्थान ...एक अभिनव टीम प्रयास

3rd Batch प्रारंभ

GS 23 Jan. 2014
3:30 PM
(₹12000 मात्र)

CSAT 23 Jan. 2014
5:30 PM
(₹6000 मात्र)

All India Test Series
(Hindi/Eng. Medium)

सामान्य अध्ययन (15 Test)
25 Jan. 9:30 AM (₹2000 मात्र)

CSAT (15 Test)
25 Jan. 12 PM (₹3000 मात्र)

बेहतरीन टीम के साथ
भारत वर्ष में न्यूनतम् फीस

Office: CS-GS, B-18, IInd Floor, Opp. Aggarwal Sweet
Main Road, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi -110009
9818041656, 9311602617
Web: www.csgsias.com www.facebook.com/csgs

YH-253/2014

मां-बच्चे की ज़रूरत अच्छी सेहत

• कविता पंत

केंद्र सरकार ने राज्यों के साथ मिलकर स्वास्थ्य सेवाओं को बेहतर बनाने खासकर महिलाओं और लड़कियों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिये अनेक योजनाएं शुरू की है जिसका असर दिखने लगा है। लेकिन तेज़ी से बढ़ती आबादी ने भारत के लिये नई चुनौतियां खड़ी की हैं जिसका मुकाबला करने के लिये केंद्र और राज्यों को कदम से कदम मिलाकर चलना होगा

जीवन की पहली जरूरत होती है अच्छी सेहत। मां और बच्चे के लिये भी जरूरी है कि वे सेहतमंद हों। अगर मां स्वस्थ रहेगीं तो वह घर को दुरुस्त रखने के साथ देश की अर्थव्यवस्था में भी योगदान कर सकती हैं। इस तथ्य को घ्यान में रखकर सरकार ने मां और बच्चे के स्वास्थ्य की तरफ विशेष घ्यान देना शुरू किया और अनेक योजनाएं शुरू कीं। फिर भी भारत में आज 54 प्रतिशत लड़कियां खून की कमी की शिकार हैं और वे पूरे दमखम के साथ जीवन की चुनौतियों का सामना नहीं कर पाती। जरूरी है कि लड़कियों और महिलाओं को रक्ताल्पता से मुक्त रखा जाए। उन्हें इस बीमारी से निजात दिलाने के लिये शिक्षित करना और हर स्तर पर स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया कराना नितांत आवश्यक है। उन्हें तमाम सामाजिक बुराइयों और चुनौतियों का मुक़ाबला करने के लिये सक्षम बनाया जाना चाहिये। मौजूदा चुनौतियों का मुक़ाबला करने के लिये लड़कियों को सेक्स संबंधी शिक्षा देने के साथ-साथ टीकाकरण, गर्भनिरोधक और एचआईवी/एड्स के बारे में जानकारी देने के ठोस उपाय करने की ज़रूरत है।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में किये जा रहे उपायों का नतीजा है कि भारत पोलियो जैसी गंभीर बीमारी से मुक्त हो गया है। तमाम चुनौतियों के बावजूद देश में पोलियो से मुक्ति पाने के लिये निरंतर अभियान चलाया गया जिसका नतीजा हुआ कि विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) ने 24 फरवरी, 2012 को भारत को उन देशों की सूची से हटा दिया जहां पोलियो वायरस सक्रिय है। भारत में पोलियो का आखिरी मामला पश्चिम बंगाल के हावड़ा जिले में 13 जनवरी, 2011 को सामने आया था। लेकिन 18 दिसंबर, 2013 तक पोलियो का एक भी मामला सामने नहीं आया जो एक जबरदस्त उपलब्धि है।

सार्वजनिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में आज़ादी के बाद भारत की सबसे बड़ी उपलब्धि मृत्यु दर में कमी लाना है। 1951 में

संभावित जीवन काल 37 वर्ष था जो 2011 में बढ़कर करीब 65 वर्ष हो गया। सरकार ने महत्वाकांक्षी स्वास्थ्य पहलों की घोषणा की जिनमें 2020 तक सभी के लिए स्वास्थ्य सेवा और सभी के लिए, खासतौर से आर्थिक दृष्टि से सबसे कमज़ोर लोगों के लिए मुफ़्त दवाओं की व्यवस्था करना है।

स्वास्थ्य संबंधी बेहतर सुविधाएं देने के लिए केंद्र सरकार ने जून 2011 में जननी-शिशु सुरक्षा कार्यक्रम शुरू किया। सरकार की राष्ट्रीय स्तर पर की गई इस पहल का मुख्य उद्देश्य बच्चे का जन्म अस्पतालों और प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों में कराना है ताकि शिशु मृत्युदर और मातृत्व मृत्युदर को कम किया जा सके।

स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि 2005 में 1,000 बच्चों के जन्म के पीछे शिशु मृत्युदर 58 थी जो घटकर 2012 में 42 पर आ गई। इसके अलावा बच्चे के जन्म के समय मां की मृत्यु का अनुपात जो 2002-03 में 1,000 के पीछे 301 था वह 2004-06 में कम होकर 254 और 2007-09 में 212 पर आ गया। कुल प्रजनन दर भी घटकर 2011 में 2.4 प्रतिशत पर आ गई जो 2005 में 2.9 प्रतिशत थी। लेकिन अभी भी गर्भावस्था के समय होने वाली परेशानियों के कारण भारत में हर वर्ष करीब 56,000 महिलाओं की मृत्यु हो जाती है।

शिशु मृत्युदर और मातृ मृत्युदर के अनुपात को कम करने के लिए देश में 2005 में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन की शुरुआत की गई। इसके लिए देश में मान्यता प्राप्त 8.90 लाख सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं का चयन किया गया है। इनमें से 8.07 लाख कार्यकर्ताओं ने प्रशिक्षण लेने के बाद अपना काम शुरू कर दिया है। इन्हें प्रशिक्षण देने के साथ ही दवाओं के किट भी दिए गए हैं। राज्यों में 8,513 डॉक्टरों, 12,420 आयुष डॉक्टरों, 2,146 विशेषज्ञों, 35,172 स्टाफ नर्सों, 14,495 पैरामैडिक्स की नियुक्ति की गई है। इसके अलावा विभिन्न राज्यों में 2,062 मोबाइल मेडिकल यूनिट काम कर रही हैं जो 424 जिलों के सुदूरवर्ती इलाक़ों में भी स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान कर रही हैं।

स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय ने दिसंबर 2009 में मां और बच्चे का ट्रैक रखने (एमसीटीएस) की व्यवस्था शुरू की। इसके अंतर्गत सभी गर्भवती महिलाओं और नवजात शिशुओं को पूर्ण स्वास्थ्य सेवा देने की व्यवस्था की गई। एमसीटीएस में सूचना प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल कर देश में गर्भधारण करने वाली प्रत्येक महिला का एक केंद्रीकृत आंकड़ा रखा जाता है।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के उप मिशन के रूप में सरकार ने 1 मई, 2013 को राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन को मंजूरी दी। इसके अंतर्गत प्रत्येक 50 से 60 हजार की आबादी के लिए एक शहरी प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र होगा। बड़े शहरों में छह शहरी प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों के लिए एक शहरी सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र होगा। 10,000 की आबादी के लिए एक सहायक नर्सिंग मिडवाइफ रहेगी। इसके साथ ही 200 से 500 परिवारों के लिए एक मान्यता प्राप्त सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता मौजूद रहेगा। राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन पर 5 वर्ष में 22,507 करोड़ रुपये अनुमानित खर्च आएगा जिसमें केंद्र सरकार की हिस्सेदारी 16,955 करोड़ रुपये की होगी। पूर्वोत्तर राज्यों, जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड को छोड़कर इस कार्यक्रम के लिए 75 प्रतिशत धनराशि केंद्र सरकार देगी और 25 प्रतिशत खर्च राज्य सरकारें उठाएंगी। विशेष श्रेणी वाले इन राज्यों के लिए केंद्र सरकार 90 प्रतिशत धनराशि देगी जबकि 10 प्रतिशत ख़र्च ये राज्य स्वयं उठाएंगे। 12वीं पंचवर्षीय योजना में इसके लिए 15,143 करोड़ रुपये आवंटित किए गए हैं।

इस मिशन में शहरी गरीबों खासतौर से झुग्गी बस्तियों में रहने वालों, रिक्शा चलाने वालों, रेहड़ी-पटरी वालों, रेलवे और बस स्टेशनों के कुली, बेघर लोगों, अनाथ बच्चों, निर्माण मज़दूरों को विशेष रूप से शामिल किया जाएगा। इसमें सभी राज्यों की राजधानियों, जिला मुख्यालयों शहरों और कस्बों को शामिल किया गया है। इस मिशन को 779 शहरों में लागू किया जाएगा और इससे 7.75 करोड़ लोग लाभान्वित होंगे।

सरकार ने महिलाओं और बच्चों के स्वास्थ्य की ओर घ्यान देने में अपनी तरफ से कोई कसर नहीं छोड़ी है। अक्तूबर 2010 में इंदिरा गांधी मातृत्व सहयोग योजना की शुरुआत की गई जो आज चुने हुए 53 जिलों में चल रही है। इस योजना में गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माताओं को बच्चे के जन्म से पहले और उसके जन्म के बाद होने वाले वेतन के नुकसान की भरपाई की कोशिश की गई है ताकि ऐसी महिलाएं अपने पोषण में सुधार कर स्वास्थ्य की तरफ घ्यान दे सकें। योजना के अंतर्गत 19 वर्ष या इससे अधिक उम्र की गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं को दो जीवित बच्चों के जन्म के लिए नगद धनराशि दी जाती है। यह धनराशि उनके बैंक खाते/डाकघर खाते में जमा करा दी जाती है।

स्वास्थ्य संबंधी बेहतर सुविधाएं देने के लिए केंद्र सरकार ने जून 2011 में जननी-शिशु सुरक्षा कार्यक्रम शुरू किया। सरकार की राष्ट्रीय स्तर पर की गई इस पहल का मुख्य उद्देश्य बच्चे का जन्म अस्पतालों और प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों में कराना है ताकि शिशु मृत्युदर और मातृत्व मृत्युदर को कम किया जा सके। इस कार्यक्रम के अंतर्गत गर्भवती महिला को गांवों और शहरी इलाकों में सरकारी स्वास्थ्य केंद्रों में सामान्य और सिजेरियन डिलीवरी तथा नवजात शिशु के लिए जन्म के बाद 30 दिन तक मुफ्त और कैशलैस सेवा प्रदान की जाती है। हर वर्ष लगभग एक करोड़ गर्भवती महिलाओं और नवजात शिशुओं को इस सेवा का लाभ मिलने की उम्मीद है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत मुफ्त और कैशलेस प्रसव, बीमार नवजात शिशु का 30 दिन तक मुफ्त इलाज, उपयोगकर्ता शुल्क से छूट, दवाओं और उपभोग की अन्य जरूरी

2005 में प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने कहा था, ''हम स्वास्थ्य को ऐसे मानव अधिकार के रूप में मान्यता देते हैं जिसे हस्तांतरित नहीं किया जा सकता, जिस पर ईमानदारी से प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है। काफी समय से हमारे देश में स्वास्थ्य के क्षेत्र में असमानताएं हैं और आवश्यक स्वास्थ्य सुविधाएं समान रुप से प्रत्येक व्यक्ति तक नहीं पहुंच पाती, इसलिए हम आर्थिक योजना और सभी नागरिकों के प्रति अपनी नैतिक जिम्मेदारी में पिछड़ गए हैं।''

वस्तुओं की मुफ्त सुविधा, मुफ्त निदान, स्वास्थ्य केंद्र में प्रवास के दौरान मुफ्त खाना यानी सामान्य प्रसव की स्थिति में 3 दिन और सिजेरियन डिलीवरी होने पर 7 दिन तक यह सुविधा उपलब्ध होगी। इसके अलावा मुफ्त खून, घर से स्वास्थ्य केंद्र तक तथा 48 घंटे रहने के बाद स्वास्थ्य केंद्र से घर तक मुफ्त गाड़ी की सुविधा की व्यवस्था की गई है।

इस योजना को अमल में लाने के लिए वर्ष 2012-13 के दौरान 2107 करोड़ रुपये आवंटित किए गए जबकि 2012-13 में 2000 करोड़ रुपये से अधिक की मंजूरी दी गई। यह योजना सभी राज्यों में लागू है। वर्ष 2012-13 में इस योजना का 106.57 लाख महिलाओं ने लाभ उठाया। सितंबर 2013 तक कुल 48.17 लाख महिलाओं को इसका लाभ मिल चुका था।

बच्चे किसी भी देश की प्रमुख पूंजी हैं। देश के मानव संसाधन को विकसित करने का सर्वश्रेष्ठ तरीका है कि उसके बच्चों की अच्छी देखभाल हो। भारत में जन्म के 1 वर्ष के भीतर 13 लाख शिशुओं की मृत्यु हो जाती है और इनमें से करीब 9 लाख यानी शिशु मृत्यु का करीब दो तिहाई मौत पहले चार सप्ताहों में होती हैं। इनमें से करीब 7 लाख अर्थात 75 प्रतिशत मौतें जन्म के एक सप्ताह के भीतर हो जाती हैं।

बच्चे किसी भी देश की प्रमुख पूंजी हैं। देश के मानव संसाधन को विकसित करने का सर्वश्रेष्ठ तरीका है कि उसके बच्चों की अच्छी देखभाल हो। भारत में जन्म के 1 वर्ष के भीतर 13 लाख शिशुओं की मृत्यु हो जाती है और इनमें से करीब 9 लाख यानी शिशु मृत्यु का करीब दो तिहाई मौत पहले चार सप्ताहों में होती हैं। इनमें से करीब 7 लाख अर्थात 75 प्रतिशत मौतें जन्म के एक सप्ताह के भीतर हो जाती हैं।

शिशु मृत्युदर को कम करने और बच्चों के स्वास्थ्य की देखभाल के लिए सरकार ने अनेक कदम उठाए हैं। इनमें फरवरी 2013 में की गई नई पहल राष्ट्रीय बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम है जिसमें बच्चे के स्वास्थ्य की स्क्रीनिंग और बीमारी का जल्दी पता लगाने की व्यवस्था है। इनमें जन्म के समय की विकृति, बीमारी, शरीर में किसी प्रकार की कमी, विकलांगता सहित विकास में देरी शामिल है। देशभर में विभिन्न चरणों में शून्य से 18 वर्ष के करीब 27 करोड़ बच्चों को इसमें शामिल करने की संभावना है। 2013-14 में 33 राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों के लिए 11,089 टीमों को इसके लिए मंजूरी दी गई है

सरकार ने राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों जैसे विश्व स्वास्थ्य संगठन और यूनिसेफ और कई अन्य के साथ मिलकर मां और नवजात को टिटेनस का टीका लगाने को 18 राज्यों में मान्यता दी है। हाल ही में इसमें उत्तराखंड, दिल्ली और मिज़ोरम को शामिल किया गया है। गंभीर कुपोषण के शिकार बच्चों के लिए दिसंबर 2013 तक देश में 872 पोषण पुनर्वास केंद्र खोले जा चुके थे।

इसके अतिरिक्त शिशु और छोटे बच्चों को स्तनपान कराने के कार्यक्रम के अंतर्गत जन्म के एक घंटे के भीतर शिशु को मां का दूध पिलाने को बढ़ावा देने, छह महीने तक केवल स्तनपान कराने और यथासमय पूरक स्तनपान को बढ़ावा दिया जा रहा है।

किशोर लड़कियों और लड़कों में एनीमिया के बढ़ते मामलों को देखते हुए स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय ने 10-19 वर्ष के बच्चों को सप्ताह में एक बार आयरन और फोलिक एसिड देने की व्यवस्था की है। अब तक 31 राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों में यह कार्यक्रम शुरू किया जा चुका है। स्कूल के अंदर और स्कूल के बाहर करीब 3 करोड़ बच्चे इस कार्यक्रम का लाभ उठा चुके हैं। इसके साथ ही मंत्रालय ने विभिन्न आयु वर्ग के बीच आयरन की कमी और एनीमिया की रोकथाम और उसके इलाज के लिए आयरन प्लस पहल शुरू की। इसके अंतर्गत भयंकर एनीमिया से पीड़ित 6 महीने से लेकर 10 वर्ष तक के बच्चों, 10 से 19 वर्ष के किशोर-किशोरियों, गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माताओं और प्रजनन के लिए तैयार 15 से 45 वर्ष की महिलाओं को आयरन और फोलिक एसिड देने के साथ-साथ उनके लिए चिकित्सा संबंधी व्यवस्था भी की गई है।

हाल के वर्षों में भारत ने स्वास्थ्य पर सार्वजनिक ख़र्च में करीब 15 प्रतिशत वृद्धि की है लेकिन यह सब-सहारा अफ्रीका (40 प्रतिशत) और यूरोप (75 प्रतिशत) की तुलना में अभी भी काफी कम है।

2005 में प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने कहा था, ''हम स्वास्थ्य को ऐसे मानव अधिकार के रूप में मान्यता देते हैं जिसे हस्तांतरित नहीं किया जा सकता, जिस पर ईमानदारी से प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है। काफी समय से हमारे देश में स्वास्थ्य के क्षेत्र में असमानताएं हैं और आवश्यक स्वास्थ्य सुविधाएं समान रुप से प्रत्येक व्यक्ति तक नहीं पहुंच पाती, इसलिए हम आर्थिक योजना और

किशोर लड़कियों और लड़कों में एनीमिया के बढ़ते मामलों को देखते हुए स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय ने 10-19 वर्ष के बच्चों को सप्ताह में एक बार आयरन और फोलिक एसिड देने की व्यवस्था की है। अब तक 31 राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों में यह कार्यक्रम शुरू किया जा चुका है। स्कूल के अंदर और स्कूल के बाहर करीब 3 करोड़ बच्चे इस कार्यक्रम का लाभ उठा चुके हैं।

सभी नागरिकों के प्रति अपनी नैतिक जिम्मेदारी में पिछड़ गए हैं।''

इस स्वीकारोक्ति के बाद केंद्र सरकार ने राज्यों के साथ मिलकर स्वास्थ्य सेवाओं को बेहतर बनाने खासकर महिलाओं और लड़कियों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिये अनेक योजनाएं शुरू की है जिसका असर दिखने लगा है। लेकिन तेज़ी से बढ़ती आबादी ने भारत के लिये नई चुनौतियां खड़ी की हैं जिसका मुकाबला करने के लिये केंद्र और राज्यों को कदम से कदम मिलाकर चलना होगा। ❑

(लेखिका वरिष्ठ पत्रकार हैं।
ई-मेल : kavitapant24@yahoo.com **)**

नशामुक्त युवा भारत का सपना

• सुनील वात्स्यायन

साल 2020 तक भारत के अधिकांश नौजवानों की औसत आयु 29 साल होगी जोकि भारत को दुनिया का सबसे युवा देश बनाएगा। चौंसठ प्रतिशत युवा उत्पादक उम्र में होगें। जहां यह एक प्रसन्नता का विषय है वहीं कुछ डर सामने आते हैं। एक वार्षिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण के अनुसार (स्वास्थ्य एवं पारिवारिक मंत्रालय, भारत सरकार गेट्स इंडिया 2010 रिपोर्ट) 6 करोड़ 20 लाख लोग भारत में शराब का सेवन करते हैं और एक वयस्क द्वारा पर केपिटा 4 लीटर शराब का सेवन किया जाता है।

भारत में तंबाकू का सेवन शुरू करने की औसत उम्र 15 वर्ष है एवं संयुक्त राज संघ 2004 के सर्वेक्षण के अनुसार औसत उम्र 16 साल थी (किसी भी नशे की शुरू करने की)। यह हर वर्ष 1 उम्र धीरे-धीरे कम होती जा रही है। यह अभिभावकों, सामाजिक संस्थाओं, नितीनिर्धारकों के लिए एक चिन्ता का विषय है।

नशे को लेकर विगत तीन दशकों में जितने भी सरकारी और गैर-सरकारी अभियान चलाए जा रहे हैं इनके परिणाम स्वरूप लोगों में नशे के प्रति जानकारी एवं इलाज से संबंधित सुविधाओं के प्रति एक सकारात्मक रुझान देखा गया है वहीं दूसरी ओर नये-नये प्रकार के नशीले पदार्थ बनाने वाली कंपनियों एवं शराब एवं तंबाकू बनाने वाली कंपनियों द्वारा प्रचार एवं प्रसार भी बढ़ा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के निदेशक डॉ. मारगेट चैन के अनुसार इस शताब्दी में जनस्वास्थ्य की चुनौतियों में बहुत बड़ा फर्क़ आया है। आज संक्रमित बीमारियां अधिक नियंत्रण में हैं और समाप्ति की ओर है। रहन-सहन की स्थितियां, सामाजिक एवं आर्थिक विकास गैर संक्रमित बीमारियों को बढ़ाने में मदद करता है। आर्थिक तरक्की, आधुनिकता एवं शहरीकरण के सैलाब ने रहन-सहन जनित बीमारियों को बढ़ावा देने में मुख्य भूमिका अदा की है। डा. चैन का कहना है कि हम एक ऐसे अमीर देशों की दुनिया में रह रहें हैं जहां पर गरीब और बीमार लोगों की बहुतायत हैं। रहन-सहन संबंधित बीमारियां इस असमानता की खाई को और गहरा कर रही है। आज बाज़ार में कई तरह के नशीले पदार्थ उपलब्ध हैं जैसे हेरोईन (स्मैक) कोकीन, एमफिटेमिनस (उत्तेजक) कुछ ऐसे नशे है जोकि गैर कानूनी है। शराब, तंबाकू, स्टेशनरी के रसायन (करेक्शन फ्लूड नामक रसायन) ऐसे नशे हैं जो कानूनन उपलब्ध हैं।

ऐसोचम सोशल डेवलेपमेंट फाउंडेशन सर्वेक्षण के अनुसार दिल्ली, बंगलुरू, मुंबई, गोवा, चंडीगढ के किशोरों में (14-19 वर्ष) क्रिसमस और नववर्ष की संध्या पर शराब का इस्तेमाल तीन गुणा बढ़ जाता है। शराब के इस्तेमाल के तीन मुख्य कारण जो सामने आए हैं वे हैं :

1) पैसों की सहज उपलब्धता।

2) मां-बाप का मार्गदर्शन ना होना।

3) विदेशी ब्रांडों की बाज़ार में आसानी से उपलब्धता।

यहां यह बात ध्यान रखना जरूरी है कि कानून में शराब पीने की औसत उम्र 21 वर्ष है। तनाव और मन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तनाव की परिस्थिति मनुष्य को मानसिक रोगी बना देती है वहीं मानसिक स्थिति का असंतुलन ही तनाव का कारण बनता है। मन की उदासी तन पर असर डालती है और किशोर कई बार आत्महत्या करने पर उतारू हो जाते हैं। बढ़ता तनाव किशोरों को नशे की तरफ ले जाता है और तनाव दूर करने के लिए किशोर तंबाकू, बीड़ी आदि चीजों का सेवन करने लगते हैं। शोध बताते हैं कि लोग अपने आर्थिक, व्यावसायिक एवं वैवाहिक तनावों से मुक्ति पाने के लिए नशीले पदार्थों का इस्तेमाल करते हैं खासतौर पर जहां सामाजिक सहयोग की कमी होती है।

नशा लेने वाला व्यक्ति एवं समाज

नशा ले रहे व्यक्ति की स्थिति समाज में लाचार और बेबस नज़र आती है। बाहर के ही नहीं परिवार के लोग भी उसे हेय दृष्टि से देखते हैं। जिसकी वजह से उनमें नशा के प्रति रुझान और समाज से दूरियां बढ़ने लगती है। समाज से उनका संबंध विच्छेद हो जाता है। ऐसे व्यक्ति अपने को नशे की दुनिया में ही सीमित कर लेते हैं। नशा लेने वाला व्यक्ति अपनी पहचान को छुपाता है जो उसके इलाज एवं पुनर्वास में बहुत बड़ी बाधा के रूप में सामने आती है। नशा लेने वाला व्यक्ति नशामुक्ती की इच्छा के बावजूद अपने को इस कुचक्र से बाहर लाने में असमर्थ पाता है। जैसे-जैसे वह नशे की ओर अग्रसर होता है उसकी कार्य क्षमता कम होती जाती है।

नशामुक्ति एवं पुनर्वास

पिछले दो दशकों में नशामुक्ति एवं पुनर्वास के क्षेत्र में काफी विस्तार एवं नए प्रयोग हुए हैं। जिससे हजारों लोगों ने स्वास्थ्य लाभ प्राप्त स्थापित कर समाज के सामने उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। नशा लेने वाले व्यक्तियों पुर्नवास के क्षेत्र में पीयर एजुकेशन (समान समूह शिक्षा) ने एक क्रांतिकारी परिवर्तन लाया है। ऐसा व्यक्ति जो नशे के दर्द से बाहर निकला, अपने को पुनर्स्थापित किया और संकल्प के साथ दूसरों की मदद करने में हीं अपनी भलाई समझता है।

देश के अलग-अलग कोनों में सरकारी मदद से चलाए जा रहे गैरसरकारी नशामुक्ती एवं पुनर्वास केन्द्रों की संख्या पिछले एक दशक में 400 के आकड़े को पार नहीं कर पाई है। जब कि नशामुक्त व्यक्तियों द्वारा चलाए जा रहे पुनर्वास केन्द्रों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। केवल हरियाणा और पंजाब में एक अनुमान के अनुसार 150 से 200 नशामुक्ति केन्द्र चल रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि नशामुक्ति एवं पुनर्वास सुविधाओं की मांग की तुलना में सरकारी सहायता प्राप्त स्वैछिक संस्थाओं द्वारा किये जा रहे प्रयास बहुत कम हैं। पर्याप्त सरकारी मदद के अभाव में धीरे-धीरे ये पुनर्वास केन्द्र बन्द होने के कगार पर हैं। नई नशा मुक्ति एवं पुनर्वास नीति प्रक्रिया सामाजिक अधिकारिता मंत्रालय द्वारा शुरू की गई है। जिसके अंतर्गत अपेक्षा है कि एक संतुलित, सामाजिक कार्य कि नीति का निर्धारण किया जाएगा। हम आशा करते हैं कि सरकार गैर-सरकारी संस्थाओं को और अधिक आर्थिक सहायता प्रदान कर उन संगठनों के प्रयासों को एक नई ऊर्जा प्रदान करेगी। आज स्वयंसेवी संस्था द्वारा चलाए जा रहे पुनर्वास केन्द्रों में सुविधाओं की गुणवत्ता को लेकर प्रश्न उठाए जा रहे हैं। कुछ वर्ष पूर्व अर्पण नाम की परियोजना नाडा इंडिया फाउंडेशन द्वारा प्रयोग के रूप में शुरू की गई। जिसमें नशा मुक्त व्यक्तियों द्वारा चलाए गए स्वैछिक संस्थाओं द्वारा नशामुक्त केन्द्र की गुणवत्ता को बनाये रखने एवं सेवाओं में तारतम्य बनाए रखने का प्रयास था। आज आवश्यकता है कि स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा इस तरह के प्रयोगों को मूर्तरूप दिया जाए और नीतिगत निर्णय लेकर इनके प्रयासों को उत्साहित किया जाए एवं उन्हें राष्ट्रीय नशामुक्ति कार्यक्रमों को मुख्यधारा से जोड़ा जाए। तभी हम भारतीय युवा मानस को गैर संक्रमित बीमारियों से बचा पाएंगे।

नशा क्या है?

कोई भी नशीला पदार्थ आपके दृष्टिकोण, संज्ञान को बदलता है उसे नशा कहते हैं। अच्छा महसूस करने के लिए, या बुरा महसूस न हो इसके लिए बार-बार नशा करना पड़े तो यह नशे पर निर्भरता का लक्षण है।

शराब एक अवसादक है। जोकि नर्वस सिस्टम और दिमाग की गतिविधियों को कम कर देती है तथा इसके सेवन से नपुंसकता बढ़ती है, शरीर के हर हिस्से को नुक्सान पहुंचता है, नींद की कमी हो जाती है, कंपकंपी होती है और कुछ मामलों में बेहोशी, मानसिक बीमारी व अचानक मौत भी हो सकती है। घरेलू हिंसा, कार्यस्थल एवं सड़क दुर्घटनाएं भी होती हैं।

नशा लेने वाले व्यक्तियों की आदतों को लोगों के प्रयासों से सुधारा भी जा सकता है। इसके लिये कुछ मुख्य बिंदुओं पर गौर किया जा सकता है जो निम्न हैं :

- इस विषय पर तभी बात करें जब आपका मित्र नशे में न हो।
- अपने मित्र / पुत्र से कहें कि आपके लिए उनका क्या महत्त्व है और आप उनके लिए कितने चिंतित हैं।
- आप अपने मित्र / पुत्र को उदाहरण देकर बताएं कि किस तरह उनके नशे या शराब पीने की आदत से आपको या अन्य लोगों को समस्या हुई।
- आप उन्हें समझाएं कि कैसे नशा एक आदत के रूप में शुरू होता है और पारिवारिक बीमारी का रूप धारण कर लेता है।
- मित्र को चिकित्सक या स्वयं सहायता समूह से संपर्क करने में मदद करें। ❑

(लेखक नाडा (नेशनल एंटी डोपिंग एजेंसी) के अध्यक्ष हैं)

योजना अब फेसबुक पर

आपकी लोकप्रिय पत्रिका योजना अब फेसबुक पर Yojana Journal नाम से पृष्ठ के साथ मौजूद है। हमारे फेसबुक पृष्ठ पर आएं और हमारी गतिविधियों तथा आगामी अंकों के बारे में ताज़ी जानकारी प्राप्त करें।

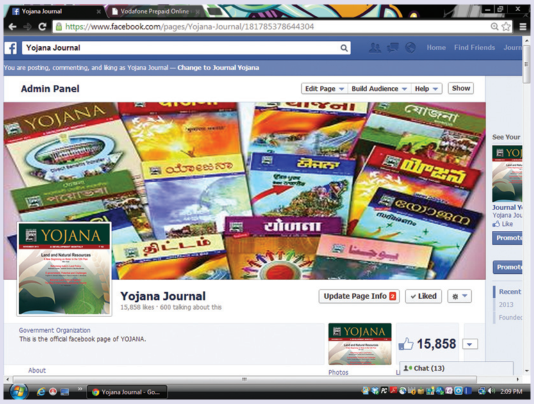

हमारा पत्ता : http://www.facebook.com/Pages/Yojana-Journal/181785378644304?ref-hL

फेसबुक पर हमसे मिलें, Like करें और अपने बहुमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराएं।

आत्मनिर्भरता की अनूठी दास्तान

• शैलेन्द्र सिन्हा

सुशीला मुरमु एक आदिवासी महिला है जो झारखंड के काठीकुंड के पहाड़पुर गांव में रहती हैं। पहाड़पुर दुमका से 27 किलोमीटर की दूरी पर बसा एक आदिवासी गांव है। आज से तीन साल पहले तक सुशीला अपने गांव के लोगों की पिछड़ी मानसिकता बदलने का लगातार प्रयास कर रही थी, लेकिन आज जब वह पीछे मुड़कर देखती है, तो उसके चेहरे पर संतोष के भाव साफ-साफ देखे जा सकते हैं क्योंकि पूरे गांव ने उसे भरपूर सहयोग दिया, हालांकि असफलता से सफलता तक की यह यात्रा कुछ आसान नहीं थी।

सुशीला अपने गांव की एकमात्र ऐसी महिला थी जो कुछ पढ़ी-लिखी थी। अपने गांव के लोगों की दयनीय स्थिति देख वह बहुत दुखी रहा करती थी। खेती में लगातार हो रहे घाटे तथा खाद और बीजों के बढ़ते दामों से तंग आकर उसके गांव के लोग अन्य जीविका की तलाश में शहर की ओर भाग रहे थे। यह सब देख सुशीला को बहुत दुख और निराशा हुई। उसने मन ही मन में एक संकल्प लिया और अपने पति महादेव टुड्डु के साथ बंजर ज़मीन को खेती योग्य बनाने की ठान ली, पक्के इरादे और मन में विश्वास लिए दोनों ने बंजर जमीन को भी लहलहाते खेतों में बदल दिया। उसने सोचा कि कम से कम यह देखकर गांव वालों को हिम्मत और प्रेरणा मिलेगी, पर ऐसा नहीं हुआ। मगर सुशीला ने भी हार नहीं मानी, इस बार उसने नये सिरे से शुरुआत की। उसने गांव की महिलाओं को अपने साथ जोड़ा। कई दिनों के परस्पर बातचीत से, जो काफी उत्साहजनक और प्रेरणादायी थी, उसने इन आदिवासी महिलाओं के विश्वास को जगाया। इसके बाद सुशीला लंहती नाम के एक बिना लाभ कमानेवाली संस्थान से जुड़ी और कुछ ही दिनों में अपना खुद का एक समूह भी बना लिया। इस समूह का नाम उसने बेलीलहंती स्वयं समूह रखा। इसके बाद उसने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा।

पिछले कुछ सालों में सुशीला ने अपने क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त की और इन आदिवासीय महिलाओं को आत्मनिर्भर होने का रास्ता दिखाया- वो भी कृषि के माध्यम से जिससे ये मुंह मोड़ चुके थे। सुशीला के

निरंतर प्रयास और सामूहिक खेती के माध्यम से एक सपना साकार हुआ। यह बदलाव संभव हुआ पैक्स योजना के माध्यम से। पैक्स ब्रिटिश सरकार के पीडीआईएफ विभाग से जुड़ा एक बहुत ही प्रभावशाली प्रयास है। यह प्रयास समाज के तिरस्कृत और पिछड़े वर्ग के विकास के लिए वरदान साबित हो रहा है।

पैक्स के इस बहुआयामी और लाभकारी योजना के अंतर्गत सुशीला ने आदिवासी समाज की महिलाओं को एकत्रित किया और सामूहिक कृषि के बारे में आवश्यक जानकारियां दी। उसके सतत् प्रयास ने आदिवासी महिलाओं को बहुत प्रेरित और उत्साहित किया और ये महिलाएं गरीबी रेखा से उपर उठने में सफल हुई।

अपने अनुभवों के बारे में सुशीला गर्व से कहती है- ये महिलाएं आज आदिवासी समाज के लिए रीढ़ की हड्डी साबित हो रही हैं। इन महिलाओं के प्रयास से ही आज संथाल जनजाति के लोग पूरे आत्मविश्वास से समाज के साथ कदम से कदम मिला कर चल पा रहें हैं। कुछ ही साल पहले इनकी स्थिति बदतर थीं। मगर आज इनकी सफलता की कहानी सबके सामने है। हमने अपने सामूहिक प्रयास से बंजर और पथरीली जमीन को भी ऊपजाऊ बना दिया है।

हाल के दिनों में वैसे ग्रामीणों की संख्या में, जो रोज़गार की तलाश में शहर की ओर पलायन कर रहे थे, काफी कमी आई है और इनके रहन-सहन में भी बदलाव आया है। अब यह गांव किसी भी मामले में किसी पर आश्रित नहीं हैं। ग्रामीणों का मानना है कि पलायन के कम होने से उनके बच्चे भी स्कूलों में ज्यादा समय दे पा रहें हैं। पहले जब ग्रामीण रोज़गार की तलाश में पूरे परिवार के साथ शहर चले जाते थे, उनके बच्चे स्कूल नहीं जा पाते थे, उनकी पढ़ाई अधूरी रह जाती थी, अब कृषि के रूप में उन्हें अपने गांव में हीं रोज़गार मिल गया है जिससे शहर जाने की जरूरत नहीं पड़ती और उनके बच्चे बिना किसी रुकावट के पूरे साल स्कूल जा पाते हैं।

सुशीला के स्वयं सहायता समूह ने सरकार की मनरेगा योजना के तहत आनेवाली सभी योजनाओं के बारे में ग्रामीणों को बताया और सभी मजदूरों को मनरेगा कार्ड बनवाने में मदद की, शीघ्र ही महिलाओं के इस समूह ने ग्रामीणों की अन्य परेशानियों को भी दूर करने का निश्चय किया। इस समूह ने उन बिचौलियों के विरुद्ध एक अभियान छेड़ा जो सरकार द्वारा शुरु की गई कई योजनाओं का लाभ लेने के लिये जरूरी कार्ड बनवाने में दलाली का काम करते थे। इसके बाद इस समूह के निशाना बने वो महाजन जो कर्ज देकर भूमिहीनों की जमीन पर कब्जा कर लेते थे।

सुशीला कहती हैं- हमने पहाड़पुर, कोदरछेला, लखनपुर, कदमा, पाकड़डीह और मंजडीहा गांव के लोगों को महाजनों से अपनी जमीन वापस लेने के लिये प्रेरित किया और उनकी जमीन वापस भी मिली। आज ऐसे सारे महाजन और कर्ज देने वाले गांव से भगा दिए गए हैं।

ऐसे ही कई उपलब्धियों के सहारे सुशीला ने आदिवासी महिलाओं का विश्वास जीता, इनमें से कुछ ऐसी भी महिलाएं थी जो शुरुआत में सुशीला और उसकी साथ की महिलाओं को शक की नज़र से देखती थीं। अंततः सुशीला ने उनका भी विश्वास जीता और कई अन्य गावों की महिलाओं को भी अपने साथ कर लिया। इन सभी महिलाओं को उसने एकजुट होकर सभी समस्याओं का हल खुद ही निकालने को प्रेरित किया।

सुशीला कहती है- इस स्वयं सहायता समूह की सफलता से हमारा हौसला बढ़ा और हमने बैंक से 25,000 रुपये का कर्ज़ लिया। इस पैसे से हमने आलू की खेती की जो कि बहुत सफल रही। हमने करीब 20 क्विंटल आलू की उपज की। अपने खपत से जो आलू ज्यादा हुए उसे हमने बाजार में बेचा और बैंक को पैसे वापस लौटा दिए। आज हम खेती के लिए आत्मनिर्भर हैं और करीब-करीब सभी फसल की खेती करते हैं। आज गांव की प्रत्येक महिला खेती और इससे संबंधित अन्य रोज़गारों से हर महीने करीब 1,500 रुपये कमाती हैं कुछ परिवारों ने तो अपने छोटे-मोटे धंधें भी शुरु कर दिए हैं।

इस समूह ने इन महिलाओं में न सिर्फ आत्मनिर्भरता बल्कि उत्तरदायित्व की भी भावना को जागृत किया है, इस समूह की महिलाएं आर्थिक आत्मनिर्भरता के साथ-साथ अपने आदिवासी समाज में व्याप्त बुराइयों को भी दूर करने का प्रयास कर रही हैं। इनके इसी प्रयास से आज इस क्षेत्र में शराब की बिक्री में भी काफी कमी आई है, और तो और शराब की कई दुकानें बंद भी हो गई हैं। इस क्षेत्र के पुरुष भी अब इन महिलाओं का लोहा मानने को मज़बूर हैं और इनकी बातों को मानते हैं।

इन सफलताओं से उत्साहित होकर ये महिलाएं अब घर की चारदीवारों से बाहर निकल ग्राम पंचायतों तक पहुंचने लगी हैं जहां प्रत्येक बृहस्पतिवार को होने वाली मीटिंग में सरकार द्वारा शुरू की गई विभिन्न योजनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करती हैं।

सुशीला कहती हैं- हमारे समूह की महिलाएं अब अपने अधिकारों के प्रति काफी जागरूक हो गई हैं, यहां तक की वो अब फॉरेस्ट राइट एक्ट के बारे में भी जानने लगी हैं, उन्होंने न सिर्फ़ पंचायत चुनावों में भाग लिया बल्कि उसमें जीत भी हासिल की। इस ग्रुप की सफलता से प्रभावित होकर जिला प्रशासन जनवितरण योजना को लागू करने में भी इनकी सहायता लेने लगी हैं।

नये-नये धंधों की शुरुआत करने में धन कि कमी अक्सर आड़े आती है, इस संबंध में कदम पंचायत की वार्ड मेंबर सुहासिनी सोरेन का कहना है - बैंक हम जैसे छोटे किसानों को कर्ज देने में आनाकानी करते हैं, कर्ज लेने का उपक्रम भी काफी पेंचीदा है, अगर यह आसान हो और हमें कर्ज आसानी से मिलने लगे तो हम अपना खुद का धंधा शुरू कर सकते हैं और ज्यादा खुशहाल हो सकते हैं। ❑

दृष्टिहीन लोगों की मदद के लिए छड़ी

बावन वर्षीय वजीर ने दृष्टिहीन लोगों की मदद के लिए बोलने वाली छड़ी विकसित की है। छड़ी के बेहतर कामकाज और कम लागत के कारण इसकी भारत और विदेशों में अच्छी मांग है।

गरीब किसान के पुत्र वजीर को अपने परिवार की मदद करने के लिए पढ़ाई जल्दी छोड़ देनी पड़ी। उन्होंने अपना कामकाजी जीवन बोरवेल मैकेनिक के रूप में शुरू किया और वाज टेक्नोलॉजी के नाम से इलैक्ट्रॉनिक्स के उपकरणों के मरम्मत की एक दुकान खोल ली। एक दिन जब वजीर अपनी दुकान पर काम कर रहे थे तो सड़क के उस पार उन्होंने देखा कि एक दृष्टिहीन व्यक्ति फिसला और कीचड़ से भरे गड्ढे में जा गिरा। क्योंकि वजीर उस दृष्टिहीन व्यक्ति से काफी दूर थे तो वह उसकी कोई मदद नहीं कर सके। इससे वजीर को बहुत बुरा लगा। इसलिए उन्होंने कुछ ऐसा करने का सोचा जिससे ऐसे हादसों को रोका जा सके। अपने इलेक्ट्रॉनिक्स ज्ञान के बल पर वजीर ने एक ऐसी छड़ी विकसित करने की सोची जो दृष्टिहीन व्यक्ति की मदद कर सके और उनके चलन-फिरने में सहायक हो।

इसके बाद वजीर ने इस छड़ी पर काम करना शुरू कर दिया और उन्होंने छड़ी की तीन संस्करण विकसित किए। इनमें बोलने और मोड़ने वाली छड़ी, सेंसर आधारित मोड़ने वाली स्वचालित छड़ी और दोहरे सेंसर के साथ बोलने और मोड़ने वाली छड़ी है। ये तीनों छड़ियों में चार्जेबल बैटरी लगी है। इनमें वायस रिकार्डिंग सिस्टम है और ये उपयोगकर्ता को सामने आने वाली किसी बाधा या पानी के बारे में सतर्क करती है। छड़ी में लगा सेंसर जैसे ही पानी का पता लगाता है तो वह उपयोगकर्ता को संकेत देता है। उपयोगकर्ता ध्वनि प्रणाली को चला देता है। भीड़भाड़ वाली जगह पर उपयोगकर्ता मात्र एक बटन दबाकर एक्सक्यूज मी, साइड प्लीज की आवाज़ लगा सकता है। छड़ी में लगे सेंसर और सतर्कता प्रणाली के कारण दृष्टिहीन लोगों के साथ दुर्घटना में उल्लेखनीय कमी आयी है।

इस छड़ी का परीक्षण अहमदाबाद की ब्लाइंड मेन्स एसोसिएशन की मदद से किया गया और लगभग 50 दृष्टिहीन लोगों की प्रतिक्रियाएं रिकार्ड की गई। उपयोगकर्ताओं ने छड़ी में ध्वनि प्रणाली की सराहना की और इसमें वाईब्रेशन उपकरण लगाने का सुझाव दिया। इसके अलावा इन लोगों ने छड़ी में दूरी बताने वाला सेंसर भी लगाने का सुझाव दिया।

इससे पहले भी ऐसी छड़ी बनाई गयी थी लेकिन उनमें न तो ऐसी बहुउद्देशीय कार्यप्रणाली थी और न ही वे इतनी कम क़ीमत की थी। एनआईएफ ने वजीर के नाम पर छड़ी के पेटेंट-2244, सीएचई-2008 के लिए आवेदन किया। इससे पहले एनआईएफ ने दो छात्रों संकेत और प्रशांत को वर्ष 2005 में तीसरी राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में ऐसी ही छड़ी की अवधारणा के लिए पुरस्कृत किया था। वजीर को एनआईएफ छठें राष्ट्रीय पुरस्कार 2012 में छड़ी को वाणिज्यिक रूप से जारी करने के लिए चुना गया।

एनआईएफ ने माइक्रो वेंचर इनोवेशन फंड स्कीम के तहत वजीर को छड़ी का व्यवसायीकरण करने के लिए मदद दी। वजीर ने भारत में एक हजार से अधिक छड़ियां बेची और इनमें कई तरह के संस्करण शामिल है। इसके अलावा बहुत सारी छड़ियां विदेशों को निर्यात भी की गई। वजीर की छड़ी बाज़ार में उपलब्ध अन्य छड़ियों से बेहतर और अधिक सुविधाओं वाली है। इसकी क़ीमत 900 रुपए से लेकर 2,400 रुपए के बीच है जबकि बाज़ार में अन्य छड़ियों की क़ीमत 3,500 रुपए प्रति है। ❑

भारत 2014

अपनीअग्रिमप्रतिजल्दीबुककराएं

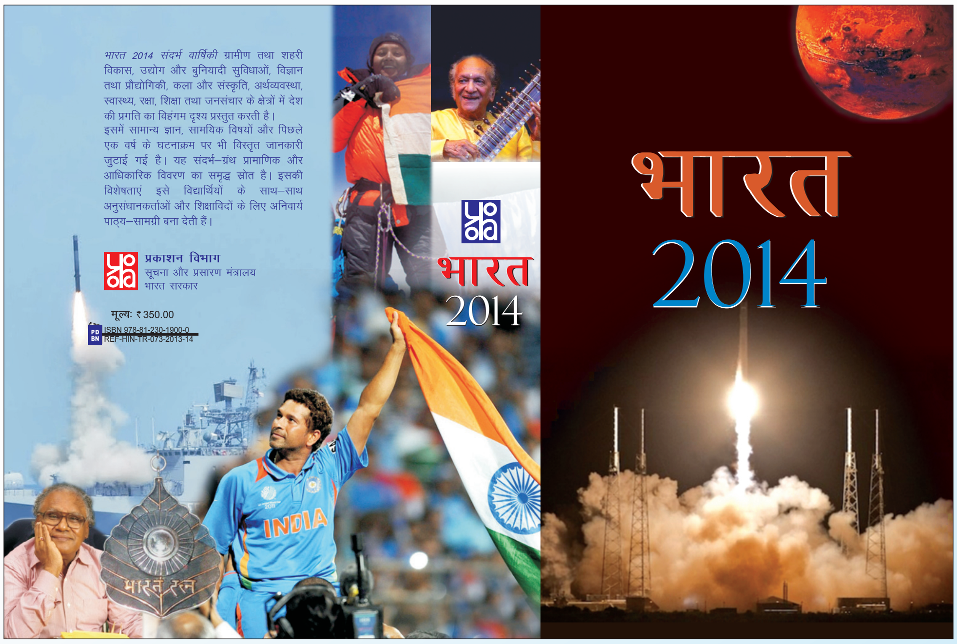

मूल्य : 350.00

हमारेसेल्सएंपोरियमऔरबिक्रीकार्यालयोंसेसम्पर्ककरें

- **नईदिल्ली**
  सूचनाभवन,सीजीओकॉम्प्लेक्स,लोधीरोड
  फोन:011–24367260,24365610
  फैक्स:011–24365609
  businesswng@gmail.com
- **दिल्ली**
  हॉलनम्बर–196,पुरानासचिवालय
  फोन:011–23890205
  businesswng@gmail.com
- **कोलकाता**
  8,एस्प्लेनेडईस्ट
  फोन:033–22488030
  bengaliyojana@gmail.com
- **तिरुअनंतपुरम**
  प्रेसरोड,नियरगवर्नमेंटप्रेस
  फोन:0471–2330650
  yojanamal50@yahoo.co.in
- **बंगलुरु**
  प्रथमतल,'एफ'विंग,केंद्रीयसदन,
  कोरामंगला
  फोन:080–25537244
  yojanakannada@yahoo.com
- **पटना**
  बिहारराज्यसहकारीबैंकबिल्डिंग,
  अशोकराजपथ
  फोन:0612–2683407
- **नवीमुंबई**
  701,'सी'विंग,7वींमंजिल,
  केंद्रीयसदन,बेलापुर
  फोन:022–27570686
  yngovt.patrika242@gmail.com
- **चेन्नई**
  'ए'विंगराजाजीभवन,
  बेसेंटनगर
  फोन:044–24917673
  editorthittam@yahoo.co.in
- **हैदराबाद**
  ब्लॉकनं.–4,प्रथमतल,
  गृहकल्पकॉम्प्लेक्स,
  एम.जी.रोड,नामपल्ली
  फोन:040–2460538
  yojana_telugu@yahoo.co.in
- **लखनऊ**
  हालनं.1,द्वितीयतल,
  केंद्रीयभवन,सेक्टर–एच,अलीगंज
  फोन:0522–2325455
- **गुवाहाटी**
  के.के.बी.रोड,न्यूकालोनी,
  हाऊसनं.–7,चेनीकुथी
  फोन:0361–2665090
  yojanaasomia@yahoo.co.in
- **अहमदाबाद**
  अंबिकाकॉम्प्लेक्स,प्रथमतल,
  पालदी
  फोन:079–26588669
  yojanagujarati@gmail.com

प्रकाशनविभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

website: publicationsdivision.nic.in
e-mail: dpd@sb.nic.in
Now on Facebook at www.facebook.com/publicationsdivision

विकास यात्रा

नया किशोर स्वास्थ्य कार्यक्रम

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने एनआरएचएम के तहत हाल में ही राष्ट्रीय किशोर स्वास्थ्य कार्यक्रम शुरू किया है। दो सौ पचास करोड़ रुपये की लागत के इस कार्यक्रम का उद्देश्य 10 वर्ष से लेकर 19 वर्ष की आयु के 34 करोड़ 30 लाख किशोरों तक पहुंचना है। यह देश की कुल आबादी का 21 प्रतिशत है। इस कार्यक्रम के तहत मुख्य रूप से किशोर और किशोरियों के पोषण, प्रजनन, स्वास्थ्य और अन्य सामाजिक बुराइयों से निपटने पर ध्यान दिया जाता है। इस कार्यक्रम में छह क्षेत्रों को प्राथमिकता पर रखा गया है जो प्रजनन स्वास्थ्य एवं यौनिक स्वास्थ्य, पोषण, मानसिक स्वास्थ्य, घरेलू हिंसा समेत चोट और लैंगिक भेदभाव पर आधारित हिंसा, दुर्व्यवहार और गैर-संचारी बीमारियां हैं। स्कूलों और अन्य स्थानों पर रहने वाले किशोरों तक पहुंचने के लिए यह योजना क्लीनिक आधारित प्रणाली के स्थान पर उससे पूरी तरह से अलग स्वास्थ्य संवर्धन और बचाव पर आधारित होने का प्रतीक है।

मुसलमानों में साक्षरता बढाने का कार्यक्रम

मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने 600 करोड़ रुपये की एक योजना की घोषणा की है जिसका मकसद अल्पसंख्यक मुस्लिम समुदाय में साक्षरता की उच्च दर हासिल करना है। मौलाना आजाद तालीम ए बालीगान योजना का मकसद 15 वर्ष और इससे अधिक आयु की एक करोड़ आबादी को साक्षर बनाना, 2.5 लाख लोगों को प्राथमिक शिक्षा देना और लगभग तीन लाख लोगों को कौशल विकास कार्यक्रम के तहत लाना है। इसके अलावा इस कार्यक्रम के तहत पांच हजार से अधिक मुस्लिम आबादी वाले गांवों में विशेष रूप से महिलाओं के लिए अतिरिक्त एक हजार वयस्क शिक्षा केंद्र खोलने का भी प्रस्ताव है। यह योजना 11 राज्यों के 61 मुस्लिम बहुल भारत के जिलों में लागू की जाएगी। इस कार्यक्रम के तहत पहली कक्षाएं सितंबर 2014 में शुरू हो जाएगीं।

प्रवासी भारतीय कामगारों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजना

प्रवासी भारतीय मामलों के मंत्रालय ने प्रवासी भारतीय कामगारों की सामाजिक सुरक्षा के लिए एक योजना शुरू की है जिसे महात्मा गांधी प्रवासी सुरक्षा योजना के नाम से जाना जाता है। इस योजना में वे प्रवासी भारतीय कामगार शामिल हो सकते हैं जिनकी आयु 18 से 50 वर्ष के बीच हो और वैध ईसीआर पासपोर्ट और वैध कार्य अनुमति हो या किसी ईसीआर देश में वैध कार्य समझौता किया हो तथा किसी बैंक में कामगार के नाम से ही एक खाता हो। इस योजना के अनुसार प्रवासी भारतीय कामगार को वृद्धावस्था में पेंशन लाभ, वापसी पर पुनर्वास और जीवन बीमा उपलब्ध कराया जाएगा। इस योजना में महिला कामगारों को कम से कम 5,000 रुपये प्रतिवर्ष जमा कराने होगें और इसमें सरकार का अंशदान 3,900 रुपए प्रति वर्ष होगा। इसी तरह कामगार को 5,000 रुपये प्रतिवर्ष जमा कराने होगें और सरकार का अंशदान 2,900 रुपये प्रतिवर्ष होगा। सरकार का अंशदान अधिकतम पांच वर्ष या प्रवास की अवधि इनमें जो भी कम होगा तक होगा। यह सेवा बैंक ऑफ बड़ौदा, इंडियन बैंक, केनरा बैंक, कॉर्पोरेशन बैंक, स्टेट बैंक ऑफ त्रवणकोर, ईएसएएफ माइक्रोफाईनेंस एंड इंवेस्टमेंट प्राइवेट लिमिटेड, अलंकित एसाईनमेंटस् लिमिटेड और आईएफएमआर रूरल फाइनेंस प्राइवेट लिमिटेड में उपलब्ध है।

हरियाणा में राष्ट्रीय कैंसर संस्थान

केंद्रीय मंत्रिमंडल ने हरियाणा के झज्जर में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स्) में 2,000 करोड़ रुपये की लागत से राष्ट्रीय कैंसर संस्थान की स्थापना के प्रस्ताव को मंजूरी दे दी है। वर्ष 2018 में पूरे होने वाला यह संस्थान अमरीका के नेशनल कैंसर इंस्टीट्यूट और जर्मनी के डी. के. एफ. जेड. की तर्ज़ पर कैंसर से बचाव और इलाज के स्वदेशी अनुसंधान की मुख्य एजेंसी के रूप में काम करेगा। झज्जर का संस्थान भारत में होने वाले तंबाकू से जुड़े कैंसर, मूत्राशय कैंसर, पित्ताशय कैंसर और गुर्दा कैंसर के अनुसंधान और इलाज पर ध्यान केंद्रित करेगा। इस संस्थान में सर्जीकल ओंकोलॉजी, रेडिएशन ओंकोलॉजी, मेडिकल ओंकोलॉजी ऐनेस्थिसिया, न्यूक्लियर मेडिसिन और अन्य इलाज के लिए 710 बिस्तर होगें। इस संस्थान में भारत में पहली बार टिश्यू प्रत्यर्पण भी होगा।

प्रकाशक एवं मुद्रक : ईरा जोशी, अपर महानिदेशक (प्रमुख) द्वारा प्रकाशन विभाग के लिए इंटरनेशनल-प्रिंट-ओ-पैक लिमिटेड, बी 206, ओखला औद्योगिक क्षेत्र, फेस-1, नयी दिल्ली-110 020 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सी.जी.ओ., कॉप्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110 003 से प्रकाशित। वरिष्ठ संपादक : रेमी कुमारी

रजि.सं.डीएल (एस) -05/3231/2012-14
Reg. No. D.L.(S)-05/3231/2012-14 at RMS, Delhi
23 जनवरी 2014 को प्रकाशित • 29-30 जनवरी 2014 को डाक द्वारा जारी

Licenced under U (DN)-55/2012-14
आर.एन.आई. 951/57
R.N.I. 951/57

अब बाजार में उपलब्ध

एक सम्पूर्ण वार्षिक संदर्भ ग्रंथ के साथ

प्रतियोगिता परीक्षाओं में

सफलता

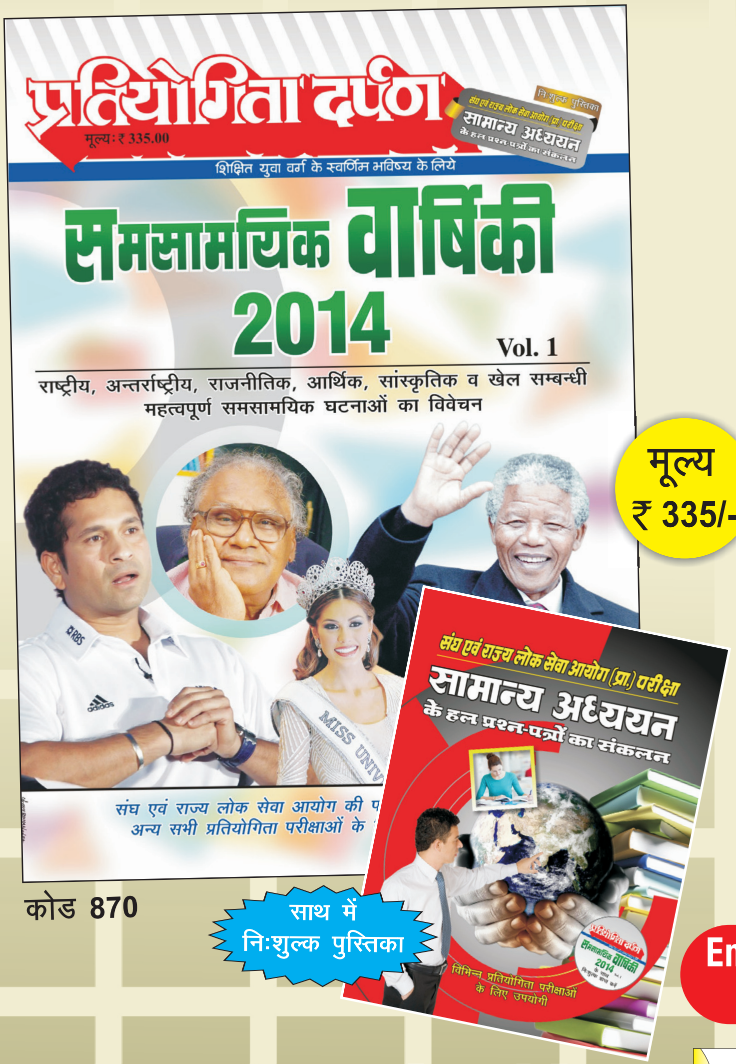

कोड 870

साथ में
निःशुल्क पुस्तिका

मूल्य
₹ 335/-

नवीन आँकड़ों
एवं
तथ्यों सहित

समसामयिक ताजा घटनाओं
का विश्लेषण,
खेल समाचार,
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी,
उद्योग व्यापार,
विशिष्ट व्यक्तियों, पुरस्कारों
एवं अन्य महत्वपूर्ण विषयों
पर उपयोगी सामग्री

English Edition Code No. 801
• ₹ 340.00

ताजा महत्वपूर्ण घटनाओं का विवेचन

*अपने निकटतम पुस्तक विक्रेता से
अपनी प्रति आज ही प्राप्त करें।*

प्रतियोगिता दर्पण

2/11ए, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा–282 002 फोन : 4053333, 2530966, 2531101, फैक्स : (0562) 4053330
• E-mail : care@pdgroup.in • Website : www.pdgroup.in
ब्रांच ऑफिस : • नई दिल्ली फोन : (011) 23251844/66 • हैदराबाद फोन : (040) 66753330
• पटना फोन : (0612) 2673340 • कोलकाता फोन : (033) 25551510 • लखनऊ फोन : (0522) 4109080

YH-250/2014